हिन्दी-गौरव-ग्रंथमाला—२४वाँ ग्रंथ

Sur shangrah

सूर-संग्रह

संग्रहकर्ता

लाला भगवानदीन

Bagwandeen

Sheret Bhawan Allhabad

प्रकाशक

साहित्य-भवन लिमिटेड,

इलाहाबाद

मूल्य १)

Sri Pratap Singh Public Library Srinagar.

[illegible]

हिन्दी-गौरव-ग्रंथमाला—३४वाँ ग्रंथ

Sur shangrah

सूर-संग्रह

संग्रहकर्ता

लाला भगवानदीन

Bagwandeen

sheret Bhawan Allhabad

प्रकाशक

साहित्य-भवन लिमिटेड,

इलाहाबाद

मूल्य १)

Sri Pratap Singh Public Library Srinagar.

आकाशिका

(अवतरणिका)

यह छोटा सा सटीक संग्रह प्रयाग-महिला-विद्यापीठ के रजिस्ट्रार श्रीयुत पं० रामेश्वर प्रसाद बी० ए० के अनुरोध से तैयार किया गया है। इसमें केवल १०० पद रखे गये हैं, जिनमें से ३५ पद विनय के ५२ पद कृष्ण की बाल-लीला के और १३ पद कृष्ण के रूप के वर्णन के हैं ।

महात्मा सूरदासजी एक भक्त कवि थे अतः उनकी कविता में विनय के पद बड़े महत्व के हैं। उनका स्वच्छ मन और ईश्वरलीन हृदय विनय के पदों में स्पष्ट दिखाई देता है । स्त्रियों का जीवन भी भक्तिमय होता है, अतः उनकी भक्ति-भावना को सुदृढ़ बनाने के लिये यह आवश्यक है कि उन्हें विनय के तत्व समझा दिये जायँ। इसी विचार से विनय के पद इस संग्रह में रखे गए हैं।

स्त्रियों का बहुत बड़ा जीवन-भाग मातृभावमय हुआ करता है, और यही भाग उनके जीवन का बहुत उपयोगी भाग

है। मातृ-भावनाओं को दृढ़ करने के लिये उन्हें यशोदा का अनुकरण करना सिखाया ही जाना चाहिये। इस विचार से कृष्ण की बाल-लीला के पद संग्रह किये गये हैं। इन पदों में उन्हें मातृ-भावनाओं के बड़े ही मनोहर और मधुर छाया-चित्र मिलेंगे, जिन्हें देख कर पाठिकाएं बहुत कुछ शिक्षा ग्रहण कर सकती हैं।

सूरदास की कविता पढ़ने से लाभ ही क्या यदि कृष्ण भगवान के सौन्दर्य की छटा आँखों में न समा जाय। इसी तात्पर्य से कुछ पद कृष्ण-रूप वर्णन के इस संग्रह में रख दिये गये हैं।

सूर की भाषा

सूरदास की भाषा 'व्रजभाषा' है। यह भाषा अब भी इटावा, मथुरा, आगरा इत्यादि के ज़िलों में ज्यों की त्यों बोली जाती है। ग्वालियर राज्य के पश्चिमी भाग, भरतपुर राज्य, और काँकरौली में यही भाषा अब भी प्रचलित है। इसका प्राचीन साहित्य बहुत ही बढ़ा-चढ़ा है। हिन्दी के प्रसिद्ध कवियों में से अधिकतर कवियों ने इसी भाषा में कविता की है। सूर, केशव, सेनापति, विहारी, देव, भूषण, मतिराम, पदमाकर इत्यादि इस भाषा के बहुत प्रसिद्ध कवि हो गए हैं।

*(व्रजभाषा की पहचान)

किसी भाषा की पहचान उसके उच्चारण, उसकी क्रियाओं उसके सर्व-नामों के रूपों तथा उसकी विभक्तियों (कारक चिह्नों) से हो सकती है। अतः हम इन्हीं विषयों पर यहाँ कुछ लिख कर पाठकों को व्रजभाषा की पहचान करा देने का उद्योग करेंगे। सूरदास के समय में व्रजमंडल के कवियों ने परंपरागत काव्य भाषा में व्रज के शब्दों की भरमार करके उसे 'व्रजभाषा' नाम दिया। व्रज में शब्दों का उच्चारण एक विशेष प्रकार से होता है। पहले उसे समझ लेना चाहिये।

१—'इ' के बाद 'अ' का उच्चारण व्रज को नहीं भाता, अतः संधि करके 'य' कर देते हैं, यथा—

सिआर	से	स्यार
किआरी	से	क्यारी
बिआरी	से	ब्यारी
बिआज	से	ब्याज
बिआह	से	ब्याह
पिआर	से	प्यार

---

* इस अंश के लिखने में हमने अपने मित्र पं० रामचन्द्र शुक्ल कृत 'बुद्ध-चरित्र' की भूमिका से बड़ी सहायता पाई है, अतः हम उनके आभारी हैं।

२—'उ' के बाद 'अ' का उच्चारण व्रज को प्रिय नहीं, अतः संधि करके 'व' कर दिया जाता है, यथा—

कुंआर	से	क्वाँर
दुआर	से	द्वार

३—व्रजजन 'इ' से 'य' को, और 'उ' से 'व' को अधिक पसन्द करते हैं, यथा—

इह	से	यह
इहाँ	,,	यहाँ
हियाँ	,,	ह्याँ
उह	,,	वह
ऊ	,,	वा
उहाँ	,,	वहाँ
जइहै	,,	जायहै
पाइहै	,,	पायहै
अइहै	,,	अयहै (ऐहै)
जइहै	,,	जइहै (जैहै)

४—'ऐ' और 'औ' का संस्कृत उच्चारण ('अइ' और 'अउ' के समानवाला) अब केवल 'य' और 'व' के पहले ही रह गया है, क्योंकि यहां दूसरे 'य' और 'व' की खपत नहीं हो सकती, जैसे गैया, कन्हैया, जुन्हैया, भैया और कौवा, हौवा, लौवा, नौवा इत्यादि में।

५—व्रज के उच्चारण में कर्म के चिह्न 'को' का उच्चारण 'कौं' के समान, अधिकरण के चिह्न 'में' का उच्चारण 'मैं' के समान हो जाता है।

६—माहिँ, नाहिँ, याहि, वाहि, इत्यादि शब्दों के उच्चारण में 'ह' के स्थान में 'य' बोलते हैं, जैसे—

माहिँ	से	मायँ	
नाहिँ	से	नायँ	
याहि	से	याय	
वाहि	से	वाय	
काहि	से	काय	इत्यादि

७—'वैं' का उच्चारण 'मैं' सा ज्ञान पड़ता है,

आवैंगे	से	आमैंगे
जावैंगे	से	जामैंगे

(विशेषताएँ)

(१) व्रज में साधारण क्रिया के तीन रूप होते हैं:—

(क) 'नो' से अंत होने वाला, जैसे—करनो, लेनो, देनो।

(ख) 'न' से अंत होनेवाला, जैसे—आवन, जान, लेन, देन।

(ग) 'बो' से अंत होनेवाला, जैसे—करिबो, लैबो, दैबो इत्यादि।

(२) सकर्मक क्रिया के भूतकाल के कर्ता में 'ने चिह्न' लगता है, "स्याम तुम्हारी मदन मुरलिका नेक सी 'ने' जग मोह्यो"। सूरदास ने इसका प्रयोग कम ही किया है, पर किया जरूर है।

(३) सकर्मक भूतकालिक क्रिया का लिंग और वचन भी कर्म के अनुसार होते हैं, जैसे – हौं सखि नई चाह यह पाई। मैया री ! मैं नाहीं दधि खायो।

(४) सब प्रकार की क्रियाओं में लिंगभेद पाया जाता है।

(५) साधारण क्रियाओं के रूप तथा भूतकालिक कृदंत भी 'ओकारान्त' होते हैं, जैसे (साधारण क्रिया)—करनो, दैवो, देनो, दीबो, आवनो। (भूतकालिक कृदंत)— आयो, गयो, खायो, चल्यो।

(६) क्रियाओं में और सर्वनामों में कभी कभी पुराने और नये दोनों रूप पाये जाते हैं- जैसे –

	(पुराने)	(नये)
(क्रिया)	करहिं, करहु	करैं, करौ
	आवहिं, जाहिं	आवैं, जायँ
(सर्वनाम)	जिनहिं	जिन्हैं
	तिनहिं	तिन्हैं
	जाहि	जाको
	ताहि	ताको

(७) 'जाना' और 'होना' क्रिया के भूतकालिक दो दो रूप होते हैं, जैसे—

जाना से गया और गो, (बहुवचन में) गे ।

होना से भया और भो, (बहुवचन में) भे ।

(८) कभी कभी वर्तमान कृदंत दीर्घान्त भी होते हैं, जैसे—आवतो, जातो, भावतो, सोहातो इत्यादि ।

(९) (क) अवधी क्रियाओं के 'ब' में 'ई' मिला देने से विधि क्रिया हो जाती है, जैसे—आयबी, करबी, जानिबी इत्यादि ।

(ख) खड़ी बोली की क्रिया के 'धातु' रूप में 'इयो' लगाने से भी विधि क्रिया बनती है, जैसे-आना से आइयो, करना से करियो ।

(१०) सर्वनाम उत्तम पुरुष कर्त्ता कारक—मैं, हौं (बहु० ब० हम)

" " सम्बन्ध कारक —मो, (" " हमारो)

" " कर्म कारक—मोको—हमको,—हमहिं

" मध्यम पुरुष कर्ता कारक—तू, तैं (बहुवचन तुम)

" " सम्बन्ध—कारक—तेरो (" तुम्हारो)

" कर्म कारक—तोको, तुम कौं

सर्वनाम अन्य पुरुष कर्ताकारक—वह या सो (बहुबचन वै, ते)

" " सम्बन्ध कारक—वाको, ताको

" " कर्मकारक—वाको, वाहि, ताको, ताहि ।

(११) कारक चिन्ह लगने के पहले नीचे लिखे सर्वनाम यों बदलते हैं—यह = या। वह = वा। सो = ता। को, कौन = का। जो, जौन = जा।

(१२) व्रज भाषा के कुछ विशेष कारक चिन्ह ये हैं—

कर्ता का—ने	करण का—सों, तें
कर्म का—कौं	संप्रदान का—कौं
अपादान का — तें	सम्बन्ध का—को

अधिकरण का—मैं, मों, पै (कभी, पर भी)

(१३) संज्ञाएँ, विशेषण और सम्बन्धकारक सर्वनाम प्रायः ओकारान्त होते हैं। जैसे (संज्ञा) घोरो, झगरो, ओसारो किनारो।

(विशेषण) छोटो, बड़ो, ऊँचो, नीचो।
(सर्वनाम) अपनो, मेरो, तुम्हारो, तेरो।

(१४) सर्वनामों में कारक चिन्ह लगने के पहले, अवधी भाषा की तरह, 'हि' नहीं लगता—जैसे,

अवधी में	व्रज में
काहि को	काको
जाहि को	जाको
ताहि को	ताको
वाहि को	वाको

परन्तु सूरदासजी ने कहीं कहीं 'हि' लगा कर भी काम चलाया है। अस्तु,

हैं तो और भी अनेक बारीकियाँ, पर चतुर पाठिका इतनी बातें जान लेने से व्रजभाषा को पहचान सकेंगी। अतः अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं जान पड़ती।

व्रजभाषा में परंपरागत पुरानी काव्यभाषा के प्रयोग अब तक भी थोड़े बहुत मिलते हैं, जैसे—लोयन, सायर, करहिं, स्यामहिं, दीह, कीन, हो, हौं, हुतो, स्यों, हि इत्यादि। प्राकृत, संस्कृत, तथा अपभ्रंश प्राकृत की क्रियाओं के रूप अलग ही पहिचाने जा सकते हैं, जैसे—कीजै, जीजै, उपजंत, करंत, पठंत इत्यादि।

खड़ी बोली और अवधी से तो व्रजभाषा का चोली-दामन का सा साथ है। विदेशी भाषाओं (फारसी, अरबी, पञ्जाबी गुजराती इत्यादि) से शब्द लेकर मनमाने ढङ्ग से नया रूप दे देना तो इस भाषा की एक खास विशेषता है। इसी शक्ति से पुष्ट होकर यह भाषा भरपूर मस्त और चुस्त हो गई है। इसके उदाहरण सूर की कृति में सर्वत्र पाये जाते हैं।

(इस भाषा की उपयोगिता)

कविता के लिए व्रजभाषा क्यों विशेष उपयोगी समझी जाती है, इस बात को स्पष्ट करने के पूर्व 'कविता क्या है?'

इसका विवेचन करना परमावश्यक जान पड़ता है। कविता किसे कहते हैं इस विषय में आचार्यों के भिन्न भिन्न मत हैं। अपने अपने रुचिवैचित्र्य के अनुसार लोगों ने 'कविता' की परिभाषायें की हैं। यदि पण्डितराज जगन्नाथ "रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम्" कह कर काव्य की व्याख्या करते हैं, तो साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ कविराज 'शब्द' की चमत्कृति को काव्य न मानकर कह बैठते हैं "वाक्यं रसात्मकं काव्यम्"। परन्तु अम्बिकादत्त व्यासजी इन दोनों लक्षणों से सन्तुष्ट नहीं होते। वे कहते हैं कि केवल 'शब्द' और 'वाक्य' तक ही 'काव्य' को सीमित क्यों किया जाय। अतः उनकी सम्मति के अनुसार 'लोकोत्तरानन्ददाता प्रबंधः काव्यनाम भाक्' अर्थात् लोकोत्तर आनन्द देनेवाली 'रचना' ही 'काव्य' है। परिभाषा कोई चाहे किसी प्रकार क्यों न करे; पर तात्पर्य सब का एक ही है। 'काव्य' उस भावपूर्ण रमणीय रचना को कहते हैं जो अन्तस्तल को स्पर्श कर चित्त में एक अभूतपूर्व लोकोत्तर आनन्द का संचार करती है। मानव-हृदय का स्वाभाविक गुण है कि वह कोमलता, मधुरता, सुन्दरता एवं सरलता को ही अधिक पसन्द करता है। अतः जिस रचना में इन गुणों के साथ साथ हृदय को हिला देनेवाले भव्य भाव भरे हों वही 'कविता' है। उन भावों को व्यक्त करने के लिये शब्दावली की आवश्यकता है। 'शब्द' दो प्रकार के होते हैं—निरर्थक और सार्थक। निरर्थक शब्दों से हमारा कोई प्रयोजन नहीं। सार्थक शब्दों के

पुनः दो भेद होते हैं—'रमणीय' और 'अरमणीय'। काव्य में अरमणीय शब्दों के लिये स्थान ही नहीं है। 'काव्य' बिना रमणीय शब्दों के 'काव्य' कहा ही नहीं जा सकता। अतः कोमल कान्त पदावली का होना काव्य में अत्यावश्यक है। कोई भाव कितना ही सुन्दर क्यों न हो अगर उसके लिये श्रुतिकटु शब्दों का प्रयोग किया जायगा तो वह मन को रुचेगा नहीं। इसके विपरीत 'कोमल कान्त पदावली' द्वारा साधारण बोलचाल की भाषा में भी रौनक आ जाती है, शुष्क और कर्कश विषयों में भी नई जान सी आ जाती है। 'कादम्बरी' के रचयिता कवि 'बाणभट्ट' के विषय में एक किम्बदन्ती प्रसिद्ध है। जब वे कादम्बरी का पूर्वार्द्ध मात्र समाप्त कर चुके थे और नायक को नायिका के पास पहुँचाया ही था, तब कराल काल ने कादम्बरीकथाकार कवि के नाम स्वर्ग का 'समन' जारी कर दिया। अपनी इस अपूर्व कृति को अपूर्ण देख कर कवि के मन में महती ग्लानि हुई। किन्तु अपने सुयोग्य सुत-युगल का स्मरण आते ही चित्त में ढाढ़स बँधा। तुरन्त अपने आज्ञाकारी विद्वान् पुत्रों को बुला भेजा। उनके आते ही उन्होंने सामने के एक सूखे पेड़ की ओर इशारा करते हुए जिज्ञासा की कि वह कौनसा पदार्थ है। ज्येष्ठ पुत्र ने, जो विद्वत्ता में किसी से कम न था, यह समझ कर कि एक सूखे पेड़ के लिये 'शुष्क शब्दावली' का ही प्रयोग करना समुचित है, झट से उत्तर दिया—"शुष्कोवृक्षस्तिष्ठत्यग्रे।" क्या ही विद्वत्तापूर्ण उत्तर था। एक सूखे पेड़ की शुष्कता का

चित्र ही अपनी शब्दावली में खींच दिया। परूषावृत्ति के प्रयोग से उन्होंने पेड़ की शुष्कता का भान पूरी तरह से करा दिया। किन्तु कवि का चित्त इससे सन्तुष्ट न हुआ। पुनः उन्होंने अपनी जिज्ञासापूर्ण दृष्टि अपने लघु तनय की ओर फेरी। सुकवि का सुयोग्य पुत्र 'पुलिन्द' कहता है "नीरस तरुरिह विलसति पुरतः"। कमाल कर दिया। अपनी कोमल कान्त पदावली से एक सूखे पेड़ को भी हरा भरा कर दिया, नीरस तरु को सरस कर दिया। मरणासन्न पिता के मुख पर आनन्द की एक अपूर्व झलक दिखाई दी, पुलिन्द परीक्षा-पास हो गया। कवि ने अपना कार्य-भार सुपुत्र को सौंप शान्ति की श्वास ली। कहने का तात्पर्य यह है कि कवि रूखे—मानवहृदय को न रुचनेवाले—विषयें को भी अपनी कोमल कान्त पदावली से सरस कर देता है। व्याकरण, वेदान्त ऐसे ऐसे उबा डालनेवाले विषयों को भी कविश्रेष्ठ कालिदास, गोस्वामी तुलसीदास, म० सूरदास आदि कवि-पुंगवों ने बहुत ही सरस बना दिया है। ताड़का राम के बाणों से घायल हो खून से लदफद होकर मर जाती है। पर कालिदास अपने पाठकों के सामने वह अरुचिकारक बीभत्स दृश्य रखना पसन्द नहीं करते, वे कहते हैं—

"राममन्मथ शरेण ताड़िता दुःसहेन हृदये निशाचरी।
गन्धवद्रुधिर चन्दनोक्षिता जीवितेश वसतिं जगाम सा॥"

—रघु० सर्ग ११ श्लोक २०।

इसी प्रकार तुलसीदासजी को भी देखिये। रणभूमि में रामचन्द्रजी विजय प्राप्त करके खड़े हैं। उनका शरीर राक्षसों के रुधिर के छींटों से भरा-पुरा है। पर कवि को इसमें भी बीभत्सता के बदले चमत्कार ही नजर आता है, सौन्दर्य ही दृष्टिगोचर होता है, क्या सुन्दर कल्पना है, देखिये—

"भुजदंड सर-कोदंड फेरत रुधिर कन तन अति बने।
जनु रायमुनी तमाल पर बैठीं बिपुल सुख आपने॥"

—लंका कांड।

कवि-कौशल इसे कहते हैं। कवि अपनी प्रतिभा से अरुचिपूर्ण विषयों को भी रुचिपूर्ण दृष्टि से ही देखता है। कुरूप वस्तुओं को भी अपनी ललित पदावली का आवरण देकर सुन्दर बना देता है। ललित पदावली से एक ग्रामीण भी प्रसन्न हो जाता है। बालकों की तोतली बोली में गाली भी प्रिय जान पड़ती है। यही कारण है कि कविता के लिये हमको भाषा विशेष की आवश्यकता होती है। कुछ लोगों का कहना है कि कवि भाषा को आवश्यकतानुसार कोमल बना सकता है। ठीक है; परन्तु कहाँ नैसर्गिक कोमलता, कहाँ बनावटी कोमलता। आप मराठी भाषा को कितनी ही कोमल क्यों न बनावें वह बँगला की स्वाभाविक मधुरता को नहीं पा सकती। बङ्गला के पद बड़े कोमल होते हैं, और जो माधुर्य उनके गीतों में जान पड़ता है वह और भाषाओं में नहीं। व्रजभाषा में

भी ये उपर्युक्त सभी गुण वर्त्तमान हैं, वरन् मधुरता में बङ्गला से भी बढ़कर है। हिन्दी के अन्तर्गत गिनी जानेवाली भाषाओं में से जो लालित्य, जो माधुर्य, जो मनोमोहकता व्रजभाषा में हैं वह और किसी भाषा में है ही नहीं। व्रजभाषा में काव्य के उपयोगी रमणीय शब्दों की भरमार है। कर्णकटुता तो है ही नहीं। व्रजभाषा में एक विशेष सिफत यह भी है कि इसमें हम शब्दों को स्वेच्छानुकूल बना सकते हैं। 'कृष्ण' से 'कान्ह' 'कन्हैया' कँधैया, कन्हुवा इत्यादि जैसे कोमल नाम दे देना तो इस भाषा के बायें हाथ का खेल है। 'हृदय' शब्द का 'हृकार' हृदय में काँटे सा गड़ता है, पर वही शब्द जब व्रजभाषा में आकर 'हिय' हो जाता है तो कितना श्रुतिप्रिय मालूम पड़ता है। खड़ी बोली के कवियों को भी व्रजभाषा के इन मधुर शब्दों का प्रयोग झख मार कर करना ही पड़ता है। अपनी कविता में लालित्य लाने के लिये कवियों ने इनका प्रयोग किया भी है। पर जो दुराग्रह वश इस सिद्धान्त को नहीं मानते उनकी कविता में खड़ी बोली का 'खड़ापन' कान फाड़े डालता है। 'पर क्या न विषयोत्कृष्टता करती विचारोत्कृष्टता' में 'उत्कृष्टता' शब्द की कठोरता से और भी क्लिष्टता आ गई है। 'उत्कृष्टता' के स्थान पर यदि किसी समानार्थ वाची कोमल शब्द का प्रयोग किया गया होता तो क्या ही सुन्दर होता। इस हमारे कथन से यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि खड़ी बोली में कविता नहीं करनी चाहिये,

अथवा खड़ी बोली की कविता में लालित्य आ ही नहीं सकता। कवि की प्रतिभा के सामने कोई कार्य कठिन नहीं। खड़ी बोली में भी सुन्दर कविता हुई है, हो सकती है और होगी, पर व्रजभाषा की नैसर्गिक मृदुता कुछ और ही चीज है। खड़ी बोली का 'घोड़ा' शब्द लीजिये 'व्रजभाषा' में आकर इसका रूप 'घोरो' हो गया है। 'ड़कार' का 'रकार' तो हो ही गया है; पर साथ ही 'आकार' का 'ओकार' भी हो गया है, 'आकार' के उच्चारण में हमें मुंह बाना पड़ता है, 'ओकार' का उच्चारण करने में 'आकार' से कहीं अधिक सुगमता है।

व्रजभाषा में वीररस के अनुकूल ओज की भी कमी नहीं है। हम पहिले कह चुके हैं कि कविता के लिये 'रमणीय' शब्दों का ही प्रयोग किया जाता है। 'रमणीय'का अर्थ है जो जहाँ पर फब सके। भाव विशेष को व्यक्त करने के लिये शब्द विशेष की आवश्यकता होती है। इसी लिये कविता के आचार्यों ने 'रमणीय' शब्दों के तीन विभाग किये हैं जिनको वृत्तियाँ कहते हैं। वे वृत्तियाँ उपनागरिका, परुषा,और कोमला हैं। रस के अनुसार ही इन वृत्तियों का उपयोग किया जाता है। व्रजभाषा में रसानुकूल भाषा का प्रयोग करने का नियम है। वीररस की कविता में 'टवर्गादि' परुषा वृत्ति के प्रयोग से ओज उत्पन्न किया जा सकता है। कुछ लोग व्रजभाषा को जनानी भाषा बतलाते हैं। उनके अनुसार व्रजभाषा में वीररस की कविता हो ही नहीं सकती, किन्तु यह भ्रम है।

व्रजभाषा में 'वीररस' की कविता की गई है। और उसमें पूर्ण सफलता भी प्राप्त हुई है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने रामचरित मानस प्रभृति अवधी भाषा के ग्रन्थों में 'वीररस' का वर्णन एक तो किया ही बहुत कम है, दूसरे जहाँ कहीं थोड़ा बहुत किया भी है वहाँ वह ओज नहीं टपकता। वीररस, की कविता करने के लिये उन्होंने भी 'कवितावली', रामायण में व्रजभाषा का ही आश्रय लिया है। कवितावली में 'वीररस' का वर्णन बड़ी ही उत्तमता और सफलता के साथ हुआ है। पढ़ते ही रग रग में जोश आ जाता है। एक उदाहरण देखिये—

"मत्तभट-मुकुट-दसकन्ध-साहस-सइल
सृंग-बिद्दरनि जनु वज्र टांकी।
दसन धरि धरनि चिक्करत दिग्गज कमठ,
सेष संकुचित, संकित पिनाकी॥
चलित महि मेरु, उच्छलित सायर सकल,
विकल बिधि बधिर दिसि बिदिस झाँकी।
रजनिचर घरनि घर गर्भ—अर्भक श्रवत,
सुनत हनुमान की हाँक बाँकी॥"

—लंकाकाण्ड, छन्द ४४।

कवि पद्माकर का भी निम्न उदाहरण देखिये तब निर्णय कीजिये कि व्रजभाषा वास्तव में जनानी भाषा है या मर्दानी?

"बारि टाहि डारौं कुंभकर्णहिं विदारि डारौं'
मारौं मेघनादै आजु यों बल अनन्त हौं।
कहै 'पदमाकर' त्रिकूट हू को ढाहि डारौं,
डारत करेई जातुधानन को अंत हौं॥
अच्छहिं निरच्छ कपि रुच्छ ह्वै उचारौं इमि,
तोम तिच्छ तुच्छन को कछुवै न गंत हौं।
जारि डारौं लंकहि उजारि डारौं उपवन,
फारि डारौं रावण तो मैं हनुमंत हौं॥"

जिन महाशयों का इतने पर भी सन्तोष न होता हो, वे 'भूषण' की शिवाबावनी और छत्रसालदशक देखें। उसमें कोई छन्द ऐसा नहीं जो वीररस से लबालब न भरा हो। परंतु उसकी भाषा 'ब्रजभाषा' ही है। यद्यपि उन्होंने अरबी-फारसी के शब्दों का भी प्रयोग बहुत किया है, किन्तु उसमें क्रिया, सर्वनाम और विभक्तियाँ, जो किसी भाषा की पहिचान के खास चिन्ह हैं, ब्रजभाषा की ही हैं।

शृङ्गार रस के लिये तो हमें कोई भी भाषा ब्रजभाषा के समकक्ष नहीं जान पड़ती। हिन्दी का साहित्य 'शृङ्गारमय' ब्रजभाषा से ही भरा पड़ा है। हमारा तो विचार यह है कि ब्रजभाषा में किसी भी रस की कविता उत्तमता से की जा सकती है। तीनों वृत्तियों के अनुकूल शब्दों की इसमें कमी नहीं है।

सब प्रकार के भावों को प्रकट करने के लिये व्रजभाषा में काफी शब्दावली है और आवश्यकतानुसार इसका शब्दकोष और भी बढ़ाया जा सकता है, किसी से उधार लेने की ज़रूरत नहीं पड़ती। लचीला-पन व्रजभाषा का एक ऐसा गुण है जो और भाषाओं में इस परिमाण में देखने में नहीं आता। इसके लचीलेपन के कारण हम शब्दों को मनोवांछित रूप दे सकते हैं। इसी गुण के कारण कवियों ने व्रजभाषा को कविता के लिये विशेष उपयोगी समझा है। क्योंकि शब्दों के अभाव में जिस समय कवि को दूसरी भाषा से शब्द उधार लेने पड़ते हैं या गढ़ने पड़ते हैं, उस समय बड़ी कठिन समस्या आ पड़ती है। अनुकूल शब्द न मिलने से भाव ही पलट जाता है। पर्यायवाची दूसरा शब्द रखने से भी भाव नष्ट हो जाता है। ऐसे स्थानों पर भाषा का लचीलापन ही उसकी कवितातरी का कर्णधार होता है। व्रजभाषा में इस गुण का प्राचुर्य है। इन्हीं सब विशेषताओं के कारण व्रजभाषा कविता के लिये सबसे उपयुक्त भाषा समझी गई है।

(सूर का साहित्य)

विक्रमीय सोलहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध तथा समस्त सत्रहवीं शताब्दी हिन्दी साहित्य का बड़ा ही सौभाग्यशाली समय है। वैष्णव सम्प्रदाय के एक से एक अनुपम आचार्यों, महात्माओं और कवियों ने अपने जन्म से इसी समय को

अलंकृत किया था। भक्तश्रेष्ठ कविरत्न महात्मा सूरदासजी का भी जन्म इसी समय हुआ था जिनके नाम से यह काल हिन्दी साहित्य के इतिहास में 'सौरकाल' (संवत् १५६० से संवत् १६३० विक्रमीय तक) के नाम से प्रख्यात है। यह वह काल है जब व्रजभाषा का गगनाङ्गण—अथवा यों कहिये कि हिन्दी-साहित्याकाश—महात्मा सूरदास ऐसे सूर्य की दिव्य प्रभा से आलोकित हो उठा था, यह वह समय है जिस समय व्रजभाषा का साहित्य-सूर्य अपने मध्याह्न काल में पहुँच चुका था; यह वह समय है जब 'सूर' सूर-कर-विकसित कवि-कुल-कमल कानन ने अपनी हरिभजन रूपी भीनी सुगन्ध से भक्त-जनों के नासापुटों को आपूरित एवं परितृप्त कर उनको ब्रह्मानन्द के हिन्दोले में दोलायमान कर दिया था; यह वह समय है जब भक्तवर महात्मा सूरदासजी के काव्यामृत पान से सहृदय रसिक जन 'ब्रम्हानन्द सहोदर' काव्यानन्द का अनुभव कर आनन्द-सागर में गोते लगाते थे; और यह वह समय है जिसकी कीर्ति-कौमुदी आज तक हिन्दी-साहित्य का मुख उज्ज्वल किये हुए है। वास्तव में वह एक अभूतपूर्व समय होगा, जब सूरदासजी की अमृतवर्षिणी जिह्वा से काव्य, संगीत एवं भक्ति की त्रिवेणी ने प्रवाहित होकर काव्य रसिकों, संगीत-प्रेमियों तथा भक्तजनों को निष्णात किया होगा। उस समय की महिमा विचारणीय ही है वर्णनीय नहीं। हमारी जड़ लेखनी इस कार्य में नितान्त असमर्थ है।

सूर-साहित्य कितना है, क्या है, कैसा है, इस विषय के निर्णय करने में अभी तक केवल कपोलकल्पित कल्पनाओं का ही आधार लेना पड़ता है। वास्तविक तथ्य का अभी तक कुछ भी पता नहीं। हिन्दी साहित्य का इतिहास भी इस विषय में मौन धारण किये है, करे भी तो क्या? इसका पता चले कैसे? हिन्दी के दुर्भाग्य से हिन्दी-साहित्य का बहुत सा अंश शासकों की शनैश्चर-दृष्टि से असमय ही अतीत की गोद में सो गया। न जाने कितने पुस्तकालय उनके कोपकृशानु में स्वाहा हो गये, इसका कोई प्रमाण नहीं। अतः ऐतिहासिक अन्वेषण के लिये सच या भूठ जो कोई आधार मिल जाता है लाचार उसे ही मान लेना पड़ता है। यही दशा 'सूर-साहित्य' के विषय में भी है। सूरदासजी ने क्या लिखा और कितना लिखा इसे कोई नहीं कह सकता, न इसके जानने का हमारे पास कोई साधन ही है। सूरदासजी की कृतियों में से (१) सूर-सागर, (२) सूरसारावली और (३) साहित्य लहरी— ये ही तीन ग्रन्थ विशेष प्रसिद्ध हैं। (१) व्याहलो, (२) नलदमयन्ती, (३) पदसंग्रह, (४) नाग-लीला आदि कई ग्रन्थ इनके और बतलाये जाते हैं, पर जैसा ऊपर कहा जा चुका है इनका कोई प्रमाण नहीं है, न ये ग्रन्थ ही उपलब्ध हैं जिनसे इस बात का यथातथ्य निर्णय किया जा सके। 'व्यहलो' किस प्रकार का ग्रन्थ होगा, उसमें किस विषय का वर्णन होगा यह किसी को ज्ञात नहीं।

अतः इस विषय में कुछ निर्णय करना समुचित नहीं है। नलदमयन्ती के विषय में हमारी तो यह धारणा सी होती है कि यह ग्रन्थ सूरदासजी का नहीं हो सकता। इसका विषय सूरदासजी के दायरे के बाहर जान पड़ता है। ये बचपन से ही कृष्ण-भक्त थे। अतः कृष्णभक्ति को छोड़ कर अन्य किसी प्रसंग का वर्णन करना इनके स्वभाव के अनुकूल नहीं जान पडता। 'तुलसी' और 'सूर' ने 'राम और कृष्ण' के अतिरिक्त और किसी विषय में कुछ लिखा ही नहीं होगा। वास्तव में भक्त अपने इष्टदेव के अतिरिक्त और किसी का वर्णन करना इष्टदेव के प्रति विश्वासघात करना समझता है। वह जो कुछ भी कहेगा सब किसी न किसी रूप में उसके इष्टदेव से ही संबंधित होगा। दूसरे, सूरदासजी ने कोई काव्य-ग्रन्थ लिखा है इस बात का अभी तक कोई प्रमाण नहीं है। वे पद लिखा करते थे। उनके सभी पद गाने के लिये होते थे; इसलिये उन्होंने खूब सोच समझ कर ही श्रीकृष्ण को अपना आधार वनाया था। 'नलदमयन्ती' का प्रसंग गाने के लिये उपयुक्त विषय नहीं है। यह है काव्य का विषय, जिस पर काव्य ही नहीं नैषध ऐसे महाकाव्यों की रचना हो सकती है। अस्तु, जो कुछ भी हो जब तक इस ग्रन्थ की कोई प्रति प्राप्त न हो सके तब तक इस विषय में अपना मत प्रकाश करना ठीक नहीं। 'सूरदास' नाम से प्रसिद्ध हिन्दी-साहित्य में तथा वैष्णव संप्रदाय के भक्तों में कई व्यक्ति हैं, जिनमें से 'बिल्वमंगल'

'मदनमोहन' एवं अष्टछाप के प्रसिद्ध भक्त कवि सूरदासजी विशेष परिचित हैं। अतः यह संभव हो सकता है कि ये ग्रन्थ 'अष्टछाप' के 'सूरदास' के न होकर किसी अन्य 'सूरदास' के हों। पद संग्रह आदि के विषय में भी यही बात कही जा सकती है। अथवा 'सूरसारावली' की भांति ये भी 'सूरसागर' से संग्रह किये गये होंगे। ये पुस्तकें अभी तक किसी के देखने में नहीं आईं। अतः इनका निर्णय भी विवाद-ग्रस्त ही है।

अब हम सूरदासजी की उन कृतियों की ओर चलते हैं जो उनके नाम से प्रसिद्ध तो हैं ही साथ ही प्राप्य भी हैं। अतः इनको सूरदास-कृत मानने में प्रमाण भी मिल जाते हैं। इनमें सूरदासजी के व्यक्तित्व की—उनके कवित्व की —छाप है जिससे उनको पहिचानना किसी साहित्यमर्मज्ञ के लिये कोई कठिन कार्य नहीं है। 'सूरसारावली' सूरसागर के पश्चात् रची हुई जान पड़ती है। यह कोई पृथक् ग्रन्थ नहीं है। किन्तु सूरसागर की सूची ही है। सुतरां सूरसागर ही एक ऐसा ग्रन्थ है जो सूरदासजी की कीर्ति-कौमुदी से हिन्दी-साहित्य को उज्ज्वल किये है। और जो कुछ ग्रन्थ हैं वे या तो सूरसागर के सामने कोई मूल्य नहीं रखते या सूरसागर के ही सार-भाग हैं।

'सूरसागर' सूरदासजी का कोई 'प्रबन्ध-काव्य' नहीं है। अतः इसकी गणना रीतिबद्ध 'महाकाव्यों' में नहीं की जा

9588

सकती। सूरदास श्रीकृष्णजी की भक्ति की उमंग में आकर हरि-भजन सम्बन्धी पदों की रचना करते थे और प्रेम के आवेश में विह्वल होकर अपने वीणा विनिन्दित ललित स्वर से उन्हें गाया करते थे। 'सूरसागर' सूर-शिष्य-संकलित उन्हीं सुकोमल पदावलियों का स्फुट संग्रह मात्र है। इस ग्रन्थ को हम उसी श्रेणी में रख सकते हैं जिसमें 'तुलसीदास' जी की 'गीतावली' है। ये दोनों 'गीत-काव्य' कहे जाते हैं। गीतावली तुलसीदास-कृत रामभजन सम्बन्धी पदों का समूह है। जिन्हें वे समय समय पर बनाया करते थे। पीछे से उन्होंने ही अथवा उनके शिष्यों ने रामायण के कथा-प्रसंग के अनुसार उनका क्रम-बद्ध संग्रह करके 'गीतावली रामायण' बना डाला। स्वयं 'तुलसी' ने यह ग्रन्थ इस क्रम से रचा हो ऐसा नहीं जान पड़ता, क्योंकि इसके कई पदों में पुनरुक्ति है—एक ही प्रसंग कई बार आ गया है। ठीक इसी प्रकार 'सूरसागर' का भी निर्माण हुआ है। सूरदासजी के पदों का संग्रह सूरसागर में श्रीमद्भागवत के क्रम से किया गया है। श्रीमद्भागवत के अनुसार सूरसागर भी बारह स्कन्धों में बँटा है। पर दशमस्कन्ध के पूर्वार्द्ध को छोड़ कर शेष सब स्कंध इतने छोटे हैं कि सूरसागर को श्रीमद्भागवत का अनुवाद मानने में संकोच होता है। दूसरे इसमें कोई कथा बहुत ही संक्षेप रूप में है, और किसी का विस्तार आवश्यकता से अधिक है और साथ ही कई प्रसंगों की अनेक पुनरा-वृत्तियाँ हो गई हैं। यदि सूरदासजी ने

'सूरसागर' को श्रीमद्भागवत के ढंग से लिखा होता तो ये सब बातें उसमें न आने पातीं। वह ठीक उसी सिलसिले में लिखा गया होता जिस शैली के अनुसार श्रीमद्भागवत ग्रन्थ लिखा हुआ है। इन कारणों से हम सूरसागर को श्रीमद्भागवत का अनुवाद नहीं मान सकते। यह—जैसा कि हम कह चुके हैं—'सूरदास' जी के गाये हुए पदों का श्रीमद्भागवतानुक्रम से संकलित संग्रह मात्र है। सूरदासजी भक्ति की उमंग एवं प्रेम के आवेश में समय समय पर अनेक पद एक साथ रच डालते थे। अतः कथा प्रसंगों का न्यूनाधिक होना अथवा एक ही विषय की पुनरावृत्ति का होना बहुत स्वाभाविक है। यह ग्रन्थ 'प्रबन्ध-काव्य' की दृष्टि से नहीं रचा गया है। अतः इन सब दोषों की गिनती 'काव्य-दूषणों' में नहीं की जा सकती। सूरसागर में एक प्रकार से समस्त भागवत की कथा आ गई है। किन्तु दशम स्कंध में श्रीकृष्णजी की लीला का वर्णन खूब विस्तार पूर्वक किया गया है और यही सूरदासजी का मुख्य ध्येय भी था।

यह प्रसिद्ध है कि सूरदासजी के 'सूरसागर' की पद-संख्या सवालाख है। पर इतने पद अभी तक किसी ने देखे या नहीं इसमें सन्देह है। 'सूरसागर' के कई एक संस्करण निकल चुके हैं जिनमें से नवलकिशोर प्रेस,—लखनऊ, वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, और बंगवासी प्रेस, कलकत्ता के संस्करण प्रसिद्ध हैं। इन संस्करणों में किसी में चार किसी में पाँच हज़ार से अधिक

पद नहीं मिलते। इन सब प्राप्य संग्रहों का एक नूतन संस्करण निकाला जाय तो भी दस हज़ार पद बड़ी मुशकिल से मिलेंगे सवालक्ष पदों की कई प्रतियों का पता ऐसे लोगों के यहाँ मिलता है जो उसको छिपाने में ही अपना महत्व समझे बैठे हैं। सुनने में आता है कि सवालाख पदों का एक संग्रह करौली राज्य के किसी वल्लभ-संप्रदाय के गोस्वामीजी के पास है पर किसी ने अभी तक उसे देखा नहीं, अस्तु जो कुछ भी हो, सूरदासजी के १०००० से अधिक पद इस समय देखने में नहीं आते।

सूरदासजी का सूरसागर वास्तव में एक अपूर्व ग्रन्थ है। ग्रन्थ नहीं, किन्तु प्रेम, कविता एवं सङ्गीत रूपी सरिताओं के सलिल से सम्पूरित सचमुच सागर ही है। एक एक पद उस सागर का एक एक अमूल्य रत्न है। जितने पद प्राप्त हैं वे ही सूरदासजी को कविश्रेष्ठ सिद्ध करने के लिये प्रर्याप्त हैं। अपने विषय में सूरदासजी सबसे आगे बढ़े हैं। हरिभक्त लोग 'सूरसागर' को मथ कर उसमें से हरिभक्ति रूपी 'अमृत' निकाल कर 'अमरता' प्राप्त करते हैं। काव्य-प्रेमी रसिक जन-समुदाय 'कवितामृत' का पान कर ब्रह्मानन्द के सहोदर 'काव्यानन्द' का मजा लूटते हैं! फिर सङ्गीत-रसिकों का तो कहना ही क्या? वे सङ्गीत के एक एक सुर में सुर-लोक को न्यौछावर कर सकते हैं। यदि सूरदासजी के सवालाख पदों का पता चल जाय तो कह नहीं सकते कि तब समालोचक

समुदाय सूरदासजी को कौनसा स्थान देगा ? अभी सूरदास-जी अपने विषय में किसी से घट कर नहीं हैं । तब तो उनका साहित्य इतना अधिक हो जायगा जितना कि हिन्दी का सम्पूर्ण साहित्य मिलाकर भी न हो सकेगा। हमारी समझ से हिन्दी-साहित्य तो दरकिनार, तब तो संस्कृत, अँग्रेज़ी ही क्या संसार के किसी भी कवि का साहित्य इतने प्रचुर परिमाण में और इतना उत्तम नहीं होगा। सवालाख पद लिख जाना कोई आसान काम नहीं है। इस समय तो यह बात गप सी जान पड़ती है, स्वप्न सी प्रतीत होती है। पर हमारे पास लोगों में यह बात सिद्ध करने के लिये कोई प्रमाण भी तो नहीं है। अस्तु बाकी पद मिलें चाहे न मिलें, जितने पद प्राप्य हैं वे कम नहीं हैं। अतः यथालाभ सन्तुष्ट होना ही समीचीन है। ऐसा सुना है कि अष्टछाप के परमानन्ददास का लिखा एक 'परमानन्द सागर' भी ऐसा ही ग्रंथ है पर हमने उसे देखा नहीं, हाँ उसके कुछ पद सुने तो जरूर हैं।

अन्त में हम सूर-साहित्य के विषय में दो-एक बातें और भी कह देना उचित समझते हैं। 'सूरसागर' में हमें पाठान्तर बहुत मिलते हैं। ऐसा केवल 'सूरसागर' में ही हो सो नहीं किन्तु हमारे प्राचीन सभी ग्रन्थों में एक प्रकार से पाठान्तर का रोग सा लग गया है। लिपि-प्रमादों से, प्रेस की भूलों से, श्रवण दोष से अथवा अन्य कारणों से पाठान्तर हो जाना बहुत संभव है। सूरसागर के विषय में तो यह बात विशेष

रूप से लागू है। उनका साहित्य गाने के लिये पहिले ही से काम में लाया जाता है। अतएव जिह्वादोष से 'खिचड़ी' का 'खचड़ी' होना बहुत आसान है। इन सब कारणों से हमें कई स्थलों पर पाठ-निर्णय करने में बड़ी कठिनता का सामना करना पड़ा है। हमें जो पाठ अच्छा जँचा वही स्वीकार किया है। लोग हमें प्रायः पाठ बदलने और पाठान्तर न देने का दोष लगाते हैं। पहिले अपराध के विषय में हमारा यह कहना है कि हम पाठ अपनी इच्छानुसार नहीं बदलते। कई पुस्तकों का पाठ मिलाकर जो उचित जान पड़ता है वही रखते हैं। दूसरे अपराध के विषय में हमें कुछ नहीं कहना है। हम पाठान्तर देने के बिलकुल विरोधी हैं। ठीक ठीक पाठ का निर्णय न कर सकना और पाठान्तर देकर पाठकों को गड़बड़ी में डालना हम उचित नहीं समझते। इससे पाठकों का उपकार तो कम होता है सन्देह की मात्रा अधिक बढ़ जाती है।

(हिन्दी साहित्य में सूर का स्थान)

किसी कवि का साहित्य में कौनसा स्थान है, यह निर्णय करना कोई आसान काम नहीं है। जब तक उस साहित्य के समस्त कवियों का पूर्ण रूप से अध्ययन एवं मनन न कर लिया जाय, तब तक तो ऐसा करना सिवाय अनधिकार चेष्टा के और क्या कहा जा सकता है। हम पहिले कह चुके हैं कि कवियों के क्षेत्र भिन्न भिन्न होते हैं, इससे यह कार्य और भी

कठिन हो जाता है। हाँ एक ही विषय के कवियों के दो कवियों के विषय में हम इतना कह सकते हैं कि इन दोनों में से अमुक ने अधिक सफलता पाई है। किन्तु किसीसाहित्य के सभी कवियों को एक ही तराजू में तोलकर उनका वजन मालूम करना भारी भूल है। किसी एक कवि का स्थान निर्धारित करने में अन्यान्य कवियों के साथ घोर अन्याय हो जाता है। इस विचार से सहसा ऐसा कह देना कि अमुक कवि नवरत्नों में से अमुक रत्न है, अमुक पंचरत्न का रत्न है, अमुक बृहत्त्रयी में से है, अमुक लघुत्रयी में से है, अमुक बड़ा है, अमुक छोटा है, आदि नितान्त असमीचीन है। कई लोगों ने ऐसा किया भी है, पर हमारी समझ में ऐसा करने से सेनापति, रहीम ऐसे उच्च कोटि के कवियों के साथ घोर अन्याय हुआ है। इनका नाम तक महा-कवियों में नहीं लिया गया है। हम ऐसा किस बिरते पर कह सकते हैं कि बिहारी और देव में से अमुक बड़ा है और अमुक छोटा है ? अथवा केशव का दर्जा दास और देव से पहिले या बाद को है इत्यादि कैसे भद्दे और ओछे विचार हैं ! किसी कवि का स्थान निर्णय करते समय हमको यह नहीं देखना चाहिये कि उसने कितना लिखा है। वल्कि देखना यह चाहिये कि उसने जो कुछ भी लिखा है वह कैसा लिखा है। न हम किसी कवि के समस्त साहित्य को ही दूसरे कवि के समस्त साहित्य से मिला सकते हैं, इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिये कि कवि की रुचि किस विषय से है। जिस प्रसंग से कवि को

एकान्त प्रेम होगा उस विषय को वह खूब मन लगाकर लिखेगा, और वही उसका सर्वोत्तम काव्य (Master-piece) होगा। तब किसी एक कवि के सर्वोत्तम काव्य को उसी विषय के सर्वोत्तम काव्य से मिलाना उपयुक्त होगा। इस सिद्धान्त के अनुसार यदि हम 'सूर' के रामायण और 'तुलसी' के रामचरितमानस को लेकर 'सूर' का स्थान निश्चित करने बैठें तो महात्मा सूरदासजी के साथ महा अन्याय होगा। रामायण उनका सर्वोत्तम विषय (Master-Piece) है ही नहीं, मन की तरङ्ग के कारण उन्होंने वह भी लिख डाला होगा। कवि के सर्वोत्तम काव्य (Master-piece) में ही उसका रूप रहता है। सूर का जो रूप हम 'विनय' 'बालकृष्ण' और 'भ्रमरगीत' आदि में पाते हैं, वह सर्वत्र नहीं, इसी प्रकार 'पद्माकर' का 'रामरसायन' लेकर कोई 'तुलसी' से मिलाने लगे तो हम इसे प्रमाद के अतिरिक्त और क्या कह सकते हैं। अतएव सूर को तुलसी से एक दम बढ़ कर मानने, या तुलसी को ही सूर से उच्च पदवी देने का हमें कोई अधिकार नहीं है। एवं प्रकारेण जब हम आचार्य केशवदासजी की ओर देखते हैं तो यह कहना ही पड़ता है कि उनको महाकवि बिहारी या देव से मिलाना और उनके साथ आचार्य केशव का स्थान निर्धारित करना महा अज्ञानता है। और तो और तुलसी और सूर से भी हम केशव का मिलान नहीं कर सकते। उनका क्षेत्र इन सबसे भिन्न है, और उस क्षेत्र में ये अद्वितीय हैं। केशवदासजी आचार्य

थे। अतएव उनकी और महाकवि विहारी की तुलना कैसी? आचार्य केशव की तुलना आचार्य देव से की जा सकती है अवश्य, पर वहाँ आचार्य केशव का पलड़ा बहुत नीचे झुका हुआ जान पड़ता है। देव उनका सामना कर नहीं सकते। खेद है कि इस प्रकार की अनर्गल चेष्टाओं के कारण हिन्दी-साहित्य में आज दिन बड़ी अंधा-धुन्धी चल रही है, लोगों में भ्रम का अन्धकार दिन दिन फैलता जा रहा है; पर इसका प्रतीकार कोई नहीं।

सूर और तुलसी के विषय में भी यह विवाद बहुत दिनों से चला आ रहा है, पर अभी तक इस बात का निर्णय नहीं हो पाया कि कौन श्रेष्ठ है। हो भी तो कैसे? जब कोई किसी से श्रेष्ठ या घट कर हो तब न! किन्तु महात्मा तुलसीदासजी की व्यापकता को देखते हुए जब हम सूर को सामने लाते हैं तो 'तुलसी' का पलड़ा कुछ झुका हुआ नजर आता है। तुलसी ने सभी क्षेत्रों का मसाला भरा है किसी को नहीं छोड़ा। साहित्यिक, सांगीतिक, सामाजिक, साम्प्रदायिक, राजनीतिक, दार्शनिक कोई भी क्षेत्र ऐसा न बचा जो 'तुलसी' की कृपा-कोर से वंचित रहा हो। तुलसी का लक्ष्य इतना संकुचित नहीं था कि वे कविता या सम्प्रदाय तक ही सीमित रहते। कवि का धर्म है कि वह अपने समय की सभी प्रकार की— सहित्यिक, सामाजिक, नैतिक, आदि—विश्रृङ्खलताओं को दूर करे। तुलसी ने यही किया भी। इसके विपरीत सूर का

हृदय एकान्त-प्रेमी था। इसी कारण उन्होंने एकमात्र प्रेम का ही वर्णन किया। प्रेम के सभी अंगों का खूब विस्तृत वर्णन किया। यद्यपि दोनों महात्माओं और महाकवियों ने जो भी कविता की सब 'स्वान्तः सुखाय' की, किन्तु 'तुलसी' के 'स्वान्तः सुखाय' ने सारे समाज को, मानव-समुदाय से सम्बन्ध रखने वाले प्रत्येक समाज को, बहुत लाभान्वित किया, सुख पहुँचाया; और सूर ने केवल काव्य को, सम्प्रदाय को तथा सहृदय रसिक समाज को ही आनन्दाम्बु से आप्लावित किया। परन्तु यह मानना पड़ेगा कि सूर ने प्रेम के जिन अंगों उपांगों का, अणु परमाणु तक का; दर्शन किया और कराया वह हिन्दी-संसार में ही नहीं संसार के साहित्य में भी नसीब नहीं है।

सुतराम् हिन्दी-साहित्य-संसार में महात्मा सूरदासजी का स्थान निर्द्धारित करते हुए एक श्रीगोस्वामी तुलसीदासजी ही ऐसे हैं जो उनसे दो एक कदम आगे बढ़े हुए दिखाई देते हैं। अन्य कोई भी कवि ऐसा नहीं है जो किसी भी सिद्धान्त को दृष्टिकोण में रख कर 'सूर' पर विजय प्राप्त कर सके।

सूरदासजी भक्ति-काव्य और गीत-काव्य के महाकवि हैं। भगवद्भजन का सुलभ मार्ग, और गाने के लिये ललित कोमल कान्त पदावली जो चाहिये सो 'सूर' के काव्य में मिल सकता है। प्रेमी की सच्ची अभिव्यक्ति, बालविनोद का मधुर आनन्द, माता के वात्सल्य का सच्चा अनुभव, दाम्पत्य प्रेम का अपूर्व

सुख, एवं इन्हीं सब के द्वारा भगवत्प्राप्ति का सर्व सुलभ उपाय, यदि आपको अभीष्ट हो तो आपको इसके लिये कहीं दूर न भटकना पड़ेगा। बस अब हम अपने समस्त अनुभव और परिश्रम का फल सूत्र रूप में बता देना चाहते हैं --

"यदि आप अलौकिक एवं अविरल आनन्द का अनुभव करना चाहते हैं, तो महात्मा सूरदासजी के पदों को पढ़ कर स्वयं भी काव्यानन्द लूटिये और अपने कलकंठ से गाकर औरों को भी अपना सहभागी बनाइये॥"

किसी कवि ने महात्मा सूरदासजी के पदों की मनोमोहकता के बारे में क्या ही सुन्दर उक्ति कही है --

"किधौं सूर को सर लग्यो, किधौं सूर की पीर।
किधौं 'सूर' को पद लग्यो, रहि रहि धुनत सरीर॥

(सूर थे कौन)

'सूरदास' नामधारी पाँच कवि हो गए हैं। सबकी कविता हिन्दी में पाई जाती है। सबकी कविता अलग अलग पहचानी जा सकती है, पर पहचाननेवाले अब विरले हैं। जिन सूरदास की कविता इस संग्रह में एकत्र है, वे वे सूरदास थे जो श्रीविठ्ठलनाथजी गोस्वामी के साथ रहा करते थे। ये जाति के सारस्वत ब्राह्मण थे, इनके पिता का नाम रामदास था जो आगरा-मथुरा की सड़क पर स्थित रुणकता नामक ग्राम में रहा करते थे। यहीं सूरदासजी का जन्म संवत् १५४० वि० के

लगभग हुआ। ये जन्मान्ध नहीं थे, यह बात इनकी कविता से प्रमाणित हो सकती है। जन्मांध मनुष्य रंगों का वर्णन नहीं कर सकता, पर सूर ने किया है, अतः प्रमाणित है कि ये जन्मान्ध न थे।

किसी किसी का मत है कि इनके एक जेठे भाई भी थे। पिता के मर जाने के बाद, अन्धे हो जाने पर, बड़े भाई ने इन्हें निकम्मा समझ घर से निरादरपूर्वक निकाल दिया। ये लड़कपन से ही कृष्णभक्त और उत्तम गायक थे। घर से निकाले जाने पर ये मथुरा को चले। रास्ता भटक कर एक कुएं में गिर गये, कृष्ण ने आकर इन्हें निकाला और दिव्य दृष्टि देकर दर्शन दिये। इन्होंने कृष्ण से पुनः अन्धे ही बने रहने का वरदान माँगा। मर्म यह था कि कृष्ण की छवि देखकर अब इन आँखों से दूसरे का रूप क्या देखें।

इस घटना के अनन्तर सूरदास जी आगरे के निकट गऊघाट नामक स्थान में रहने लगे। खँजली लिये सदा कृष्ण गुण-गान किया करते थे और जो कुछ भी श्रोताओं की उदारता से मिल जाता था उसी पर अपना निर्वाह करते थे।

एक बार श्रीवल्लभाचार्यजी उस स्थान पर आये और इनको मधुर गायक और भजनानन्दी देख अपने साथ रहने का अनुरोध किया। सूर ने सहर्ष स्वीकार कर लिया और इस प्रकार ये व्रजक्षेत्र में पहुँच, आचार्यजी के ठाकुरजी के दरबार

के मुख्य आठ कवियों में शामिल हो गये। नित्य नवीन पद रच कर ठाकुरजी को सुनाना, बस यही इनका काम था। इसी कारण इनके पदों में पुनरुक्ति अधिक पाई जाती है।

इनका लोकान्तर्गमन सं० १६२० के लगभग अनुमान किया जाता है। इनको हिन्दी का व्यास कहा जाय तो अनुचित न होगा।

बिजय दशमी सं० १९८६	भगवानदीन (दीन) काशी

सूर-संग्रह

(विनय)

१—राग बिलावल

चरन कमल बंदौ हरिराई।
जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै अंधे कूं सब कछु दरसाई॥
बहिरो सुनै मूक पुनि बोलै रंक चलै सिर छत्र धराई।
सूरदास स्वामी करुनामय बार बार बंदौं तेहि पाई॥

शब्दार्थ—हरिराई=कृष्ण भगवान । पंगु=लँगड़ा, जिसके पैर बेकाम हों। लंघै=लाँघ जाता है। कूं=को । दरसाई=देखपड़ता है। बहिरो=(सं० वधिरः)। मूक= गूंगा। रंक=निर्धन । छत्रधराई=छत्र धारण करके । करुणामय= दयावान। पाई=पैर, चरण।

अलंकार—'चरन कमल' में रूपक। 'बार बार' में वीप्सा।

अर्थ—श्रीकृष्ण भगवान के कमल रूपी चरणों की वंदना करता हूँ। जिन (श्रीकृष्ण भगवान) की कृपा से लँगड़ा मनुष्य पर्वत को लाँघ जाता है, अंधे मनुष्य को सब कुछ दिखलाई पड़ने लगता है, बहिरा सुनने लगता है, और

गूंगा बोलने लगता है तथा निर्धन मनुष्य (इतना धनवान् हो जाता है कि) सिर पर राजछत्र धारण करके चलने लगता है। सूरदास कहते हैं कि कृष्ण भगवान बड़े ही दयामय स्वामी हैं, अतः मैं बार बार उनके चरणों की बंदना करता हूँ ।

विशेष—"मूकं करोति वाचालं पंगुं लंघयते गिरिम्" का भाव है। कृष्ण की कृपा से असंभव भी संभव हो सकता है। कोई कोई "जाकी कृपा........छत्र धराई" इन दो पंक्तियों को 'चरण' का विशेषण मानते हैं, पर हम 'हरि राई' का ही विशेषण मानना ठीक समझते हैं। इस पद में यह शिक्षा दी गई कि ईश्वर सर्वशक्तिमान है, असम्भव को भी सम्भव कर सकता है। उसीका भजन करना उचित है (ईश्वर की सर्वशक्तिमत्ता) ।

२—राग सारंग

अपनी भक्ति दे भगवान ।
कोटि लालच जो दिखावहु नाहिनै रुचि आन ॥
जा दिना तें जनमु पायों यहै मेरी रीति ।
विषय-विष हठि खात नाहीं डरत करत अनीति ॥
थके किंकर जूथ जम के टारे टरत न नेक ।
नरक-कूपनि जाइ जमपुर पर्‌यो बार अनेक ॥

महा माचल मारिबे की सकुच नाहिन मोहिं।
पर्‌यों हौं पन किये द्वारे लाज पन की तोहिं॥
नाहिनै काँचो कृपानिधि करौ कहा रिसाइ।
'सूर' तबहुँ न द्वार छाँड़ै डारिहौ कढ़राइ॥

शब्दार्थ—भक्ति=(सं० भज=सेवने) सेवा करने की श्रद्धा और रुचि। भगवान=नीचे लिखी छः शक्तियां जिसमें हों :—

दो०—सब ऐश्वर्य, सुधर्म, यश, श्री, विराग, विज्ञान।
ये षट शक्ति समेत जो, तेहि कहिए भगवान॥

नाहिनै=नहीं ही है। रुचि=इच्छा। आन=अन्य। विषय=इंद्रियजन्य आनन्द-लिप्सा। किंकर=चाकर। जूथ=समूह। माचल=मचलनेवाला, हठी। सकुच=लज्जा। पन=प्रतिज्ञा। काँचो=कच्चा, दृढ़ताहीन। डारिहौ कढ़राइ=कढ़िलवाकर फेंकवा दोगे। कढ़राना=(सं० कर्षण+हिं० लाना)। नेक=तनक भी।

भावार्थ—हे भगवान! मुझे अपनी सेवा की रुचि और श्रद्धा दीजिए। यदि आप करोड़ों प्रकार के लोभ दिखलाओगे तो भी मुझे अन्य वस्तु की इच्छा ही नहीं है। जब से मेरा जन्म हुआ तभी से मेरी यह रीति रही है कि विषयरूपी विष खाने से और अनीति करने से डरता नहीं। यमराज के दूत मुझे दण्ड देते देते थक गए; पर मैं अपनी हठ से

तनक भी हटता नहीं। जमपुर में अनेक बार जाकर नरक-कुंडों में पड़ चुका हूँ। मैं महा हठी हूँ, मार खाने की मुझे लज्जा नहीं। मैं तो भक्ति की भिक्षा लेने की प्रतिज्ञा करके आपके दरवाजे पड़ा हूँ। अब अपने पन की लाज रखना आपका काम है (ईश्वर की प्रतिज्ञा यह है:—कोटि बिप्रबध लागैं जाही। आये शरण तजौं नहिं ताही) हे कृपानिधान! मैं पन का कच्चा नहीं हूँ, आप नाराज़ होकर करेंहीगे क्या? अर्थात आपके नाखुश होने पर और झिड़कने पर भी मैं यहाँ से न हटूँगा। झिड़कने और दुतकारने की तो बात ही क्या, यदि आप मुझे कढ़िलवाकर दूर फेंकवा देंगे तो भी सूरदास दरवाज़ा छोड़नेवाला नहीं।

अलंकार—"विषय विष" में रूपक।

(नोट) इस पद में निज कार्पण्य वर्णन है।

३—राग बिलावल

अबकै माधव मोहि उधारि।
मगन हौं भवअंबुनिधि में कृपासिंधु मुरारि॥
नीर अति गंभीर माया, लोभ-लहरि तरंग।
लिये जात अगाध जल में गहे ग्राह अनंग॥
मीन इंद्रिय अतिहि काटत मोट अघ सिर भार।
पाग न इत उत धरन पावत उरझि मोह सेवार॥

काम क्रोध समेत तृष्णा पवन अति झकझोर।
नाहिं चितवन देत तिय-सुत नाम-नौका ओर॥
थक्यो बीच बेहाल बिहवल सुनहु करुनामूल।
स्याम! भुज गहि काढ़ि डारहु 'सूर' व्रज के कूल॥

शब्दार्थ—अबकै=इस बार। माधव=(सं० मा=लक्ष्मी+धव=पति) नारायण। उधारि=उद्धार करौ। मगन=(सं० मग्न) डूबा हुआ। भव-अंबुनिधि=संसार रूपी समुद्र। लोभ-लहरि=लोभ की बढ़ती। ग्राह=घड़ियाल। अनंग=(सं० अन+अंग) कामदेव। मोट=गठरी। भार=भारी, बोझिल। सेवार=(सं० शैवाल) जल के अन्दर उगने-वाले तृणादि। तृष्णा=प्रबल इच्छा। नौका=नाव। बेहाल=मन से व्याकुल। बिहवल=(सं० विह्वल) तन से कष्टित। कूल=किनारे, निकट।

अर्थ—हे नारायण भगवान! इस बार मेरा उद्धार करो। हे कृपासागर मुरारि! मैं संसाररूपी समुद्र में डूबा हूँ (मुझे बचाओ)। इस समुद्र में माया का अति गहरा जल भरा है, और बढ़ते हुए लोभ की लहरें हैं, और कामरूपी घड़ियाल मुझे पकड़ कर बहुत गहरे जल में लिए जाता है। इंद्रियरूपी मछलियां मुझे बहुत काट रही हैं, पापों का भारी गट्ठर सिर पर है। मोहरूपी सेवार में उलझ जाने से इधर उधर ठीक तौर से पैर भी नहीं रखते बनता। काम, क्रोध और

तृष्णा की पवन बड़ा झकोरा दे रही है और स्त्री-पुत्रादि मिल कर मुझे नाव-स्वरूपी आपके नाम की ओर देखने तक नहीं देते। हे करुणामूल श्याम (कृष्ण) सुनो मैं बीच ही में थक कर तन मन से व्याकुल हो रहा हूँ, अतः आप हाथ पकड़ कर निकालिए और ब्रज के किनार पर (निकट) डाल दीजिए।

अलंकार—बहुत सुन्दर 'सांगरूपक' है।

(नोट) इसमें भी कार्पण्य वर्णन है।

४—राग धनाश्री

अब हौं नाच्यो बहुत गोपाल।
काम क्रोध को पहिरि चोलना, कंठ विषय की माल॥
महा मोह के नूपुर बाजत, निन्दा शब्द रसाल।
भरम भरो मन भयो पखावज, चलत कुसंगति चाल॥
तृसना नाद करति घट भीतर, नाना विधि दै ताल।
माया को कटि फैंटा बाँध्यो, लोभ तिलक दियो भाल॥
कोटिककला काछि दिखराई, जल थल सुधि नहिं काल।
'सूरदास' की सबै अविद्या, दूर करहु नँदलाल॥

शब्दार्थ—हौं = (सं० अहम्) मैं। चोलना = कपड़ा (यहां, नाचनेवालों की पोशाक)। नूपुर = घुँघुरू।

पखावज=मृदंग। फेंटा=कमरबंद। कोटिक कला काछि दिखराई=यह नाचनेवाले का स्वांग धर कर मैंने करोड़ों कर्तब दिखाए। सुधि नहिं काल=समय की सुधि नहीं कि कब से नाच रहा हूं। अविद्या=अज्ञान, जिसके फेर में पड़ कर जीव प्रवृत्ति मार्ग में फँसा रहता है।

भावार्थ—हे गोपाल! अब मैं बहुत नाच चुका। काम क्रोध की पोशाक और कंठ में विषय की माला पहनी है, महा मोह के घुँघुरू बजते हैं, परनिन्दा का रसीला गान गाता हूँ, भ्रमपूर्ण मन मृदंग का काम देता है, और कुसंगति की चाल पर चलता हूँ (गान में भी चाल होती है)। तृष्णा की भावना भीतर से स्वर भरती है, और अनेक प्रकार की तालें देती है। कमर में माया का कमरबंद बँधा है, लोभ का तिलक मस्तक पर लगा है। ऐसा रूप बना कर, खबर नहीं कब से, मैंने जल पर भी और थल पर भी करोड़ों कर्तब (नृत्य विद्या के) तुमको दिखलाए पर तुम अब तक न रीझे अतः अब तो रीझो और हे नन्दलाल! अब तो सूरदास की सब अविद्या दूर कर दो (जिससे अब और न नाचना पड़े।)

विशेष—इस पद में 'गोपाल' और 'नँदलाल' शब्द बड़ा मजा दे रहे हैं। गोपाल का अर्थ है 'इन्द्रियों का स्वामी' इंद्रियजन्य विकारों को रोकने में वही समर्थ है। 'नंदलाल' शब्द से यह जनाया कि तुम नाचने के परिश्रम को जानते हो (गोपियों

के संग तुम नाचे हो) अतः मेरे नाचने के परिश्रम और कलाओं को समझ सकते हो, अब रीझ कर मेरा नाच बंद करा दो।

अलंकार—गोपाल और नन्दलाल शब्दों में परिकरांकुर और समस्त पद में सांग रूपक।

(नोट) इसमें भी कार्पण्य वर्णन है।

५—राग कान्हरो

अविगत गति कछु कहत न आवै।
ज्यों गूंगेहि मीठे फल को रस अन्तरगत ही भावै॥
परम स्वाद सब ही जु निरन्तर अमित तोष उपजावै।
मन बानी को अगम अगोचर सो जाने जो पावै॥
रूप रेख गुन जाति जुगुति बिनु निरालम्ब मन चक्रत धावै।
सब विधि अगम विचारहिं तातें 'सूर' सगुन लीला पद गावै॥

शब्दार्थ—अविगत=जो समझ में न आवै। गति=गति विधि, व्यवस्था। कहत न आवै=कहते नहीं बनती। अन्तरगत=मन में ही। तोष=तुष्टि। अगोचर=जो इंद्रियज्ञान से न समझा जा सके। चक्रत=चकित। अगम=अपहुँच, जिस तक पहुंच न सकें।

(अवतरणिका)—किसी निर्गुणोपासक महात्मा ने सूर दास को अपने मत का उपदेश देकर अपनी सम्प्रदाय में लेना चाहा। उसके उत्तर में सूरदास जी ने यह पद गाया था।

भावार्थ—निर्गुण ब्रह्म की व्यवस्था समझ में नहीं आती अतः कही भी नहीं जा सकती। (वह वैसी ही है) जैसे गूंगे को मीठे फल का स्वाद मन में तो अच्छा लगता है (पर वह कह नहीं सकता) सब के लिये उसमें परम स्वाद है और वह निरंतर (सदा) बेहद तुष्टि उपजाता है (परन्तु उसको गूंगा कह नहीं सकता) इसी प्रकार निर्गुण ब्रह्म की गति-विधि न तो मन समझ सकता है, न वाणी उसका वर्णन ही कर सकती है, उसे वही जानता है जो उस तक पहुँचे। चूंकि उसके रूप, रेखा, गुण, जाति कुछ भी नहीं है, और उससे मिलने की कोई युक्ति भी नहीं (घुना-क्षर न्याय से उसका मिलन होता है) इसलिये उसकी उपासना अवलंबरहित है, और मन उसकी भूलभुलैयाँ में पड़ कर चकित हो जाता है। वह निर्गुण विचार के लिये भी सब प्रकार से अगम्य है। अतः सूरदास सगुणलीला के पद गाया करता है—

तात्पर्य यह कि ज्ञान चक्षुवालों के लिये जो वस्तु अगम है, वह सूर के लिये तो और भी अगम है, अर्थात मुझ सूर को तो सगुण रूप ही दुर्लभ है, केवल उसकी लीलाओं का वर्णन

सुन-सुनकर गाया करता हूँ, फिर उनका निर्गुण रूप मैं कैसे समझ सकता हूँ।

अलंकार—उदाहरण।

(नोट) इसमें अनुकूल का ग्रहण और प्रतिकूल का त्याग वर्णन है।

———

६—राग सारंग

आछो गात अकारथ गार्‌यो।
करी न प्रीति कमल-लोचन सों जनम जनम ज्यो हार्‌यो॥
निसि दिन विषय विलासनि बिलसत फूटि गई तव चार्‌यो।
अब लाग्यो पछितान पाइ दुख दीन दई को मार्‌यो॥
कामी कृपन कुचील कुदरसन को न कृपा करि तार्‌यो॥
तातें कहत दयालु देव पुनि काहे 'सूर' बिसार्‌यो॥

शब्दार्थ—आछो=अच्छा। अकारथ गार्‌यो=व्यर्थ नष्ट किया। कमललोचन=कृष्ण भगवान। ज्यो हार्‌यो=प्राण खोए। चार्‌यो=चारो आँखें (दो हृदय की और दो बाहर की) दई को मार्‌यो=दुर्भाग्य का सताया हुआ। कुचील=मलीन वस्त्रधारी। कुदरसन=बदसूरत।

भावार्थ—(मैंने तो) अपना अच्छा शरीर (ब्राह्मण जात तनु) व्यर्थ ही नष्ट कर दिया (ईश्वर भजन नहीं किया)।

क्योंकि कमलनैन भगवान से प्रेम नहीं किया और अनेक जन्म ले लेकर प्राण खोए (जन्मता और मरता रहा)। हे शरीर ! तू रातोदिन विषय के मजे में पड़ा रहा, इससे तेरी हिये-कपाल की चारो आँखें फूट गईं (बिल्कुल अज्ञान हो गया)। हे अभागी ! अब हीन होकर और दुख पाकर पछताने लगा। हे कृष्ण भगवान ! तुमने किस कामी, कृपण, मलीन, और कुरूप को अपनी कृपा से नहीं तारा ? (अर्थात् मुझसे भी अधिक पापियों को तारा है) इसी से हे देव ! मैं कहता हूँ कि (जब आपने ऐसा किया है तो) फिर आपने सूरदास को क्यों बिसरा दिया है ?

अलंकार—'कमललोचन' में धर्मवाचक लुप्ता, 'दई को माख्यो' में लोकोक्ति।

(नोट) इस पद में मन को भर्त्सना वर्णन है।

———

७—राग सोरठ

और न जानै जन की पीर।
जब जब दीन दुखित भये, तब तब कृपा करी बल-बीर ॥
गज बलहीन बिलोकि चहूँ दिस तब हरि सरन परो।
करुना-सिंधु दयालु दरस दै सब सन्ताप हरो ॥

मागध मथो, हरो नृप बंधन, मृतक विप्र-सुत दीनो।
गोपी गाय गोपसुत लगि प्रभु सात द्योस गिरि लीनो॥
श्रीनृसिंह वपु धारि असुर हति भगत वचन प्रतिपारो।
सुमिरत नाम द्रुपद-तनया कहँ पट समूह तन धारो॥
मुनि मद मेटि दास व्रत राख्यो अम्बरीष हितकारी।
लाखागृह में शत्रु सैन तें पांडव विपति निवारी॥
वरुणपास व्रजपति मुकराये दावानल दुख टारो।
श्रीवसुदेव देवकी के हित कंस महा खल मारो॥
सोइ श्रीपति जुग जुग सुमिरन बस बेद बिसद जस गावै।
असरन-सरन 'सूर' जाँचत है, कोऊ सुरति करावै॥

शब्दार्थ—बलवीर=बलदेव जी के भाई (कृष्ण जी)। मागध=मगध देश का राजा (जरासंध)। मागधमथो=जरासन्ध को १७ बार पराजय दी। हरो नृप बंधन=जरासन्ध के यहां अनेक राजा कैद थे उनको छोड़ाया। मृतक विप्रसुत दीनों=अपने गुरु सन्दीपन जी के कई पुत्र जो डूब कर मर गए थे पुनः यमपुर से ला दिये। गिरि लीनो=गोवर्द्धन पर्वत उँगली पर रखे रहे। भगत=भक्त (प्रहलाद)। प्रतिपारो=प्रतिपालन किया। द्रुपद-तनया=द्रौपदी। पट...धारो=वस्त्र का ही रूप धारण किया। मुनि=दुर्वासा मुनि। व्रजपति=नंदजी। मुकराये=छोड़ाए।

(नोट) इस पद में जिन जिन कथाओं की ओर संकेत है, उन्हें विस्तृत रूप में लल्लूलाल कृत प्रेम सागर से तथा अन्य

ग्रन्थों से पढ़ लेना चाहिए। हम यहाँ केवल नाम मात्र लिखे देते हैं।

१—गज और ग्राह की कथा। २—जरासंध के १७ युद्ध।
३—संदीपन के पुत्रों की। ४—गोवर्द्धन धारण की कथा।
५—प्रहलाद और नृसिंह की। ६—द्रोपदी चीरहरण की।
७—दुर्वासा और अंबरीष की। ८—लाक्षागृह की कथा जिसमें पांडवों को जलवा देने की युक्ति दुर्योधन ने की थी।
९—नन्द जी के जमुना में डूबने की कथा।
१०—दावानल पान की। ११—कंसवध।

इनमें से दुर्वासा और अम्बरीष की कथा कम प्रसिद्ध है, उसे महाभारत में देख लो।

भावार्थ—सरल ही है—

(नोट) इस पद में गोप्तृत्व वर्णन है। इससे इष्टदेव पर विश्वास दृढ़ होता है।

८—राग धनाश्री

करें गोपाल के सब होय।
जो अपनो पुरुसारथ मानै अति ही झूठो सोय॥
साधन मंत्र जंत्र उद्यम बल ये सब राखे गोय।

जो कछु लिखि राख्यो नँदनंदन मेटि सकै नहिं कोय ॥
दुख सुख लाभ अलाभ सहज तुम कतहिं मरत ही रोय।
'सूरदास' स्वामी करुनामय स्याम चरन मन पोय ॥

शब्दार्थ—पुरुसारथ=(सं० पुरुषार्थ) बल, युक्ति । उद्यम=परिश्रम । राखौ गोय=छिपा रखो (मत प्रगट करो) नँदनंदन=कृष्ण । अलाभ=हानि । सहज=(सं० सह+ज) पैदा होने के साथ ही पैदा होनेवाले । कतहिं=क्यों । रोय मरत हो=रंज करते हो । पोय=पोहन कर, लगाओ ।

भावार्थ—(हे नर !) सब कुछ कृष्ण ही के किए हो सकता है । किसी काम के करने में जो मनुष्य अपने पुरुषार्थ का घमंड करता है (ऐसा मानता है कि यह काम मैंने किया है) वह अत्यन्त झूठा है । अतः मंत्र, यंत्र, परिश्रम और बलादि साधनों को छिपा दो (इन्हें महत्व न दो, करो भले ही) क्योंकि जो कुछ कृष्ण ने निश्चित कर रखा है, उसे कोई अन्यथा नहीं कर सकता । दुःख सुख और लाभ हानि ये पैदा होते समय साथ ही जन्मते हैं, तुम रंज क्यों मानते हो (रो रो क्यों मरते हो) । सूरदास कहते हैं कि वह स्वामी अत्यन्त दयालु है, अतः उसी के चरणों में मनको लगाओ (वह चाहेगा तो तुम्हारा दुख मेट देगा) ।

(नोट) इस पद का यह तात्पर्य नहीं कि किसी कार्य के लिये परिश्रम वा उपाय न करो । करो और ज़रूर करो, पर यह

विश्वास रखो कि फल देना वा न देना ईश्वर के अधीन है। "कर्मण्येवाधिकारस्ते" वाला सिद्धान्त मानने का उपदेश है। कर्म वा उपाय से विरत रहने का नहीं।

ईश्वर की सर्वशक्तिमत्ता का ज्ञान कराकर उस पर दृढ़ विश्वास रखने का उपदेश है। आगेवाले पद में यह कहा गया है कि जो मनुष्य ईश्वर को सर्व शक्तिमान मानकर उस पर दृढ़ विश्वास रखता है, उसे सब पदार्थ प्राप्त हो सकते हैं।

६—राग विलावल

कहा कमी जाके राम धनी।
मनसा नाथ मनोरथ-पूरन सुखनिधान जाकी मौज घनी॥
अर्थ धर्म अरु काम मोक्ष फल चार पदारथ देत छनी।
इन्द्र समान हैं जाके सेवक मो बपुरे की कहा गनी॥
कहौ कृपन की माया कितनी करत फिरत अपनी अपनी।
खाइ न सकै खरच नहि जानै ज्यों भुअंग सिर रहत मनी॥
आनँद मगन रामगुन गावैं दुख संताप की काटि तनी।
'सूर' कहत जे भजत राम को तिन सों हरि सों सदा बनी॥

शब्दार्थ—धनी = मालिक। मनसा नाथ = इच्छाओं का स्वामी (जिसकी प्रेरणा से इच्छा जाग्रत होता है, यदि वह चाहे तो बासना पैदा ही न हो)। मनोरथ पूरन = इच्छा की

पूर्ति करने वाला। सुख निधान=सुखों का भंडार। मौज=दान, बखशीश। घनी=बहुत अधिक। छनी=क्षण भर में। बपुरा=बेचारा। कहा गनी=क्या गिनती है। भुअंग=(सं० भुजं+ग) सर्प। तनी=बन्द, रस्सी। बनी=पटती है।

भावार्थ—उसको किस बात की कमी है, जिसके मालिक रामजी हैं। वेही रामजी इच्छाओं के प्रेरक (उत्तेजक) और पूरक हैं, जो सुख के भण्डार और अति अधिक दानी हैं। वे अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष एक क्षण मात्र में दे सकते हैं। मेरी तो गिनती ही क्या है, इन्द्र समान (देवगण) जिनके सेवक हैं! कृपण की दौलत ही कितनी, तिस पर भी मेरी मेरी कहता फिरता है। वह न तो खा सकता है, न खर्चना ही (दूसरों को देना ही) जानता है। वह उसी प्रकार सम्पत्ति को रखता है जैसे सर्प के सिर पर मणि रहती है (न स्वयं खाता है न दूसरे को लेने देता है, पर राम भक्त कैसे होते हैं कि) दुःख और संताप की रस्सी काट कर, आनन्द में निमग्न होकर सदा श्रीरामजी के गुण गाते हैं। सूरदास कहते हैं कि जो सदा रामजी को भजते हैं उन पर रामजी सदा प्रसन्न रहते हैं (अनुकूल रहते हैं)।

अलंकार—प्रथम चार पंक्तियों में उदात्त, छठवीं में उदाहरण, अन्तिम पंक्ति में सम।

(नोट) पाठक देखें कि सूरदासजी राम और कृष्ण में भेद नहीं मानते, नहीं तो राम शब्द के स्थान में कृष्ण लिखते।

१०——राग नट

कहावत ऐसे त्यागी दानि।
चारि पदारथ दए सुदामहिं अरु गुरु को सुत आनि॥
रावन के दस मस्तक छेदे सर हति सारँग-पानि।
बिभीषण को लंका दीनी पूरबली पहिचानि॥
मित्र सुदामा कियो अजाचक प्रीति पुरातन जानि।
'सूरदास' सों कहा निठुरई नैननि हूँ की हानि॥

शब्दार्थ—त्यागी = दानी। आनि = लाकर। पूरबली = पहिले की, पूर्व की। पुरातन = पुरानी। निठुरई = निष्ठुरता, निर्दयता।

भावार्थ—ऐसे दानी सचमुच दानी कहलाते हैं। सुदामा को चारों पदार्थ दिए और गुरु (संदीपनजी) के मरे पुत्र ला दिए (अर्थात् ऐसे पदार्थ दिए जो मनुष्य अपने उद्योग से नहीं प्राप्त कर सकता)। उस सारंगपाणि (रामजी) ने बाण मार कर रावण के दस शिर काटे, (अतः चाहिए था कि रावण का राज्य-वैभव स्वयं आप लेते, पर स्वयं न लेकर) विभीषण को लंका देदी, केवल पहले की जान पहिचान मात्र से, पूर्व प्रीति के लिहाज़ से सुदामा मित्र को अयाची कर दिया। पर सूरदास से क्या निर्दयता की कि नेत्रों की भी हानि कर दी।

(नोट) इस पद में बड़ा ही मार्मिक व्यंग्य है। चूँकि वह गूढ़ है अतः साफ किए देते हैं :—

कृष्ण और राम को लोग बड़ा दानी कहते हैं। कहते हैं कि ये दोनों अकारण दया करते हैं। सुनिये, सुदामा को चारों पदार्थ देकर अयाची कर दिया सो वह तो पुराना मित्र था, गुरु-गृह में कृष्ण के हिस्से के अनेक काम करके कृष्ण को कष्ट नहीं होने देता था। गुरु के मरे पुत्र ला दिये, सो उनसे विद्या पढ़ी थी, रावण को मार कर लंका विभीषण को दी, सो विभीषण भी पहिले रामजी को लंका के अनेक भेद बतला कर राम के साथ उपकार कर चुका था। अतः अकारण दयालु कैसे ठहरे ? अकारण दयालुता तो मैं तब जानूँ जब मुझपर दया करें। मैं तो इनको महा निठुर समझता हूँ, क्यों कि मैंने कुछ नहीं किया इसलिये ये मेरे ऊपर कृपा नहीं करते, वरन् इतनी निठुराई की कि मेरी आँखें भी हर लीं (जो जीवधारी होने के कारण मुझको मिलनी चाहिए) अर्थात् ये लोग देते नहीं वरन् हर लेते हैं, और यदि कुछ देते भी हैं, तो पहले बहुत बड़ी सेवा लेकर। इस प्रकार खरी-खोटी सुनाकर राम-कृष्ण को लज्जित करके अपना काम साधने का सूर ने उद्योग किया है।

छंदानुरोध से 'विभीषण' और 'पूरबली' शब्दों में कुछ अनुचित तोड़-मरोड़ भी की है। आगे के पद में इसके लिये माफी चाहते हैं।

११—राग सारंग

कौन गति करिहौ मेरी नाथ।
हौं तो कुटिल कुचील कुदरसन रहत विषय के साथ॥
दिन बीतत माया के लालच कुल कुटुम्ब के हेत।
सारी रैन नींद भरि सोवत जैसे पशू अचेत॥
कागज़ धरनि करै द्रुम लेखनि जल सायर मसि घोर।
लिखैं गनेश जनम भरि मम कृत तऊ दोष नहिं ओर॥
गज गनिका अरु बिप्र अजामिल अगनित अधम उधारे।
अपथै चलि अपराध करे मैं तिनहूँ ते अति भारे॥
लिखि लिखि मम अपराध जनम के चित्रगुप्त अकुलायो।
भृगुऋषि आदि सुनत चकित भये यम सुनि सीस डुलायो॥
परम पुनीत पवित्र कृपानिधि पावन नाम कहायो।
सूर पतित जब सुन्यो बिरद यह तब धीरज मन आयो॥

शब्दार्थ—गति = दुर्दशा। माया = धन। द्रुम = वृक्ष। सायर = सागर। मसि = स्याही। ओर = अंत। ममकृत = मेरे किये दोष। तऊ दोष नहिं ओर = तब भी मेरे दोषों का अंत न मिलै। अपथ = कुमार्ग। भारे = बड़े। चित्रगुप्त = धर्मराज के मुंशी। भृगु...भये = भृगु ने नारायण की छाती में लात मार कर अपराध किया था। चकित = चकित, आश्चर्यान्वित। यम......डुलायो = यमराज ने सिर डुलाया कि ऐसे पापी को रखने के लिये हमें कोई नवीन नरक बनवाना पड़ैगा

क्या। पावन नाम कहायो = ईश्वर का एक नाम पतितपावन भी है। विरद = सुयश। पुनीत = स्वयं निष्पाप। पवित्र = दूसरों को अपने स्पर्श से निष्पाप करने वाला। पावन = पतित-पावन। अर्थ-सरल है।

(नोट) १—कागज़ धरनि......नहि और—महिम्न-वाले 'असित गिरि समस्यात' वाले श्लोक का भाव है।

२—पुनीत, पवित्र और पावन में पुनरुक्ति नहीं है, ध्यान से समझिये।

३—कुल और कुटुम्ब में भी पुनरुक्ति नहीं है। दोनों शब्दों के अर्थ में जो भेद है उसे समझो।

४—लिखै गनेश जनम भर—यह हिन्दी की अद्भुत विलक्षणताओं में से एक है कि 'जनम' (जन्म) शब्द का अर्थ होता है। जीवन (ज़िन्दगी)। जनम भर = आजीवन, ज़िन्दगी भर।

१२—राग धनाश्री

जनम सिरानो अटके अटके।
सुत संपति गृह राज—मान को फिरो अनत ही भटके॥
कठिन जवनिका रची मोह की तोरी जाय न चटके।
ना हरिभजन न तृपिति विषय की रह्यो बीच ही लटके॥

सब जंजाल सु इन्द्रजाल सम ज्यों बाजीगर नटके।
'सूरदास' सोभा न सोभियत पिय बिहून धन मटके॥

शब्दार्थ—जनम = जीवन। सिरानो = तमाम हुआ। अटके अटके = संसार के झंझटों में फँसे फँसे। राज-मान = राजा के दरबार से प्राप्त सम्मान। अनत = अन्यत्र। जवनिका = चिक वा कनात, आड़ की टट्टी। चटके = शीघ्रता पूर्वक। तृपिति = तृप्ति। जंजाल = संसार के बखेड़े। इन्द्रजाल = जादू, इन्द्र की माया। बाजीगर = जादूगर। सोभा न सोभियत = शोभा नहीं पाती। बिहून = विहीन। धन = स्त्री। पिय बिहून धन = विधवा स्त्री। मटके = चटक-मटक, नाज़-नखरे, हाव-भाव।

भावार्थ—सारा जीवन संसारी झंझटों में ही बीत गया। पुत्र, सम्पत्ति, घर और राजमान के लिये अन्यत्र ही अन्यत्र भटकता फिरा। मोह (अज्ञान) की ऐसी मजबूत टट्टी बनाई है कि शीघ्र तोड़ी नहीं जा सकती। न तो हरि भजन ही हुआ न विषयों से तृप्ति ही हुई, दोनों के बीच ही में लटके रहे (न इधर के हुए न उधर के) ये सब संसारी झंझट किसी नट वा जादूगर की जादू सी मालूम होते हैं। सूरदास जी कहते हैं कि विधवा स्त्री के हाव-भाव शोभा नहीं देते।

(नोट) व्यंग्य से उपदेश यह है कि विषय वासना कभी पूरी नहीं होती, संसारी सम्बंध सब माया जाल है। जीव की

शोभा हरि भजन में ही है। अभक्त जीव विधवा के समान निराश्रित है।

अलंकार—तीसरी पंक्ति में रूपक, पांचवीं में उपमा, छठी में दृष्टान्त।

———

१३—राग सारंग

छांड़ि मन हरि विमुखन को संग।
जाके सङ्ग कुबुद्धी उपजै परत भजन में भंग॥
कहा भयो पय पान कराये विष नहिं तजत भुअंग।
काम क्रोध मद लोभ मोह में निस दिन रहत उमंग॥
कागहिं कहा कपूर खवाए, स्वान न्हवाये गंग।
खर को कहा अरगजा लेपन मरकट भूषन अंग॥
पाहन पतित बान नहिं भेदत रीतो करत निषंग।
'सूरदास' खल कारी कामरि चढ़ै न दूजो रंग॥

शब्दार्थ—हरि विमुख=अभक्त। भंग=त्रुटि। पय=दूध। भुअंग=सांप। उमंग=उत्साह। अरगजा=सुगंधित द्रव्य विशेष जो शरीर में लगाया जाता है। यह केशर, चंदन, कपूरादि को मिलाने से बनता है। खर=गधा। मरकट=बंदर। पाहन=पाषाण, पत्थर। पाहन......भेदत=पत्थर में

मारने से बाण उसमें धँसता नहीं। रीता=(सं० रिक्त) खाली। निषंग=तर्कश।

भावार्थ—सरल है।

अलंकार—३, ४, ५, ६ और ७ वीं पंक्तियों में वक्रोक्ति। अंतिम पंक्ति में वाचक लुप्तोपमा।

(नोट) इसमें षट विधि शरणागत में से "प्रतिकूलस्य वर्जनं" वाला सिद्धान्त कहा गया है।

१४—राग देवगंधार

जाको मनमोहन अंग करै।
ताको केस खसै नहिं सिर तें जो जग बैर परै॥
हिरनकसिपु परहारि थक्यो प्रहलाद न नेकु डरै।
अजहूँ सुत उत्तानपाद को राज करत न टरै॥
राखी लाज द्रुपदतनया की कुरुपति चीर हरै।
दुर्योधन को मान भङ्ग करि बसन प्रवाह भरै॥
विप्रभगत नृग अंधकूप दियो बलि पढ़िवेद छरै।
दीनदयालु कृपालु दयानिधि कापै कह्यौ परै॥

जब सुरपति कोप्यो व्रज ऊपर कहि हू कछु न सरै।
राखे व्रजजन नँद के लाला गिरिधर बिरद करै॥
जाको बिरद है गर्वप्रहारी सो कैसे बिसरै।
'सूरदास' भगवंत भजन करि, सरन गहे उधरै॥

शब्दार्थ—अंग करै=अपना सेवक स्वीकार कर लेते हैं। केस खसै नहिं=बाल भी टूट कर नहीं गिरता। बैर परै=शत्रुता पर उतारू हो। परहारि थक्यौ=मारते मारते थक गया। सुत उत्तानपाद को=ध्रुव। द्रुपद तनया=द्रौपदी। कुरुपति=दुर्योधन। पढ़िवेद=वेदपाठी ब्रह्मचारी होकर। छरै=छले। कापै कह्यौ परै=किससे कहा जा सकता है, उसकी प्रशंसा कौन कर सकता है। कहि हू कछु न सरै=कुछ कहा नहीं जाता। राखै=रक्षा की। बिरद=नाम (प्रसिद्धि)।

भावार्थ—जिसको श्रीकृष्णजी अपनी सेवा में स्वीकृत कर लेते हैं, फिर यदि सारा संसार उससे शत्रुता करने पर उतारू हो तो उसके सिर से एक बाल भी नहीं टूटता (सिर काटना तो दूर की बात है)। हिरण्यकश्यप मारते मारते थक गया पर प्रहलाद उससे ज़रा भी न डरा। अब भी ध्रुव अपने राज्य पर अटल है। जब दुर्योधन चीर हरण करना चाहता था, तब द्रौपदी की लज्जा रखी। दुर्योधन का मान तोड़ कर वस्त्र की नदी बहा दी। ब्राह्मण-भक्त राजा नृग को अंधकूप में रखा, वेदपाठी ब्रह्मचारी होकर (वामनरूप से) राजा बलि

को छला। वह दीनदयालु, कृपालु, दयानिधि ऐसा विलक्षण है कि उसका ठीक स्वभाव कौन कह सकता है। इन्द्र जब बेहद कुपित होकर व्रज पर पानी बरसाने लगा, तब व्रजवासियों की रक्षा की और गिरिधर नाम से प्रसिद्ध हुए। जिसकी प्रसिद्धि 'गर्व प्रहारी' नाम से है, वह कैसे भूल सकता है (वह कैसे भुलाया जा सकता है—अर्थात् उसे भुलाना न चाहिए)। सूरदास कहते हैं कि उसी भगवंत (सर्व शक्तिमान्) का भजन कर, उनकी शरण पकड़ने से तेरा उद्धार होगा।

अलंकार—'भगवंत' शब्द में 'परिकरांकुर' है।

(नोट) इस पद में "रक्षिष्यतीत विश्वासः" वाला सिद्धान्त कहा गया है।

१५—राग धनाश्री

जो जग और बियो हौं पाऊँ।
तो यह बिनती बार बार की हौं कत तुमहिं सुनाऊँ॥
सिव बिरंचि सुर असुर नाग मुनि सु तो जाँचि जन आयो।
भूल्यौं भ्रम्यौं तृषातुर मृग लौं, काहू स्रम न गँवायो॥

अपथ सकल चलि चाहि चहूं दिसि भ्रम उघटत मतिमंद।
थकित होत रथ चक्रहीन ज्यों निरखि करम गुन फंद॥
पौरुष रहित अजित-इन्द्रिनबस, ज्यों गज पंक पर्‍यो।
विषयासक्त नटी को कपि ज्यों, जोइ कह्यो सु कर्‍यो॥
अपने ही अभिमान दोष तें रबिहिं उलूक न मानत।
अतिसय सुकृति रहित अघ व्याकुल बृथा स्रमित रज छानत॥
सुनि त्रैताप-हरन करुनामय सन्तत दीन-दयाल।
'सूर' कुटिल राखौ सरनाई व्याकुल यहि कलिकाल॥

शब्दार्थ—बियो = दूसरा। हौं = (सं० अहम) मैं। तृषातुर = प्यास से व्याकुल। चाहि = देखकर। उघटत = उघारता है, पुनः प्रगट करता है। चक्रहीन = पहिया रहित। अजित = प्रबल। विषयासक्त = विषय स्वाद में लीन। रज छानना = धूल छानना, व्यर्थ काम करना। त्रैताप = देहिक दैविक भौतिक दुःख। करम, गुन = (अत्यन्तर तिरस्कृत वाच्य ध्वनि से यहाँ अर्थ होगा) कुकर्म और अवगुण।

भावार्थ—हे कृष्ण! यदि मैं (तुम्हारे समान वाला) कोई दूसरा मालिक पाजाऊँ, तो बार बार तुमसे विनती न करूँ (तुम्हारे समान दूसरा कोई है ही नहीं, इसीसे आपसे बार बार विनती करता हूं)। शिव, ब्रह्मा, सुर, असुर, नाग, मुनि इत्यादि इन सबों से मैं याचना कर चुका। मैं प्यासे मृग की तरह भटकता फिरा, पर किसी ने मेरा श्रम न छोड़ाया।

सब कुमार्गों में चल कर और चारों ओर देख सुन कर अब मैं मतिमन्द अपना भ्रम खोल कर आप से कहता हूँ कि मैं अपने कुकर्मों और अवगुणों के फंदों को देख कर अब मैं पहिया रहित रथ की तरह अचल हो रहा हूँ (किसी सुमार्ग में जा ही नहीं सकता)। प्रबल इंद्रियों के वशीभूत हो कर, मैं कीचड़ में फँसे हुए हाथी की तरह पौरुष हीन हो रहा हूँ, और नटी के बंदर की तरह हुकमी होकर मैं इन्द्रियों के विषयों में ऐसा आसक्त हुआ कि जो कुछ इन्द्रियों ने कहा वही मैंने किया। जैसे अपने अहंकार के दोष से उल्लू सूर्य को कुछ नहीं समझता, इसी प्रकार मैं भी अतिशय पुण्यहीन और पाप पीड़ित होकर व्यर्थ ही खाक छानने में भ्रमित हो रहा हूँ।

हे त्रिताप हरनेवाले, करुणामय, सदा दीनों पर दया करने वाले कृष्ण! मुझ कुटिल सूरदास को अपनी शरण में रख लो, क्योंकि मैं इस कलिकाल के मारे बहुत ब्याकुल हूँ (कलिकाल पापों में ही लगाये रखता है)।

अलंकार—चौथी पंक्ति में पूर्णोपमा, ६, ७, ८ वीं पंक्ति में भी उपमा।

(नोट) इस पद में ९ वें प्रकार की आत्म समर्पण भक्ति का सिद्धान्त कहा गया है।

———

१६—राग कान्हरो

जो पै तुमही विरद विसारो।
तो कहो कहाँ जाऊँ करुनामय कृपन करम को मारो॥
दीनदयालु पतितपावन जसु वेद बखानत चारो।
सुनियत कथा पुराननि गनिका, व्याध, अजामिल तारो॥
राग,द्वेष,विधि,अविधि,असुचि,सुचि जिन प्रभु जितै सँभारो।
कियो न कहूँ विलंब कृपानिधि सादर सोच निवारो॥
अगनित गुन हरि नाम तुम्हारे आज अपन पन धारो।
'सूरदास' प्रभु चितवत काहे न करत करत स्रम हारो॥

शब्दार्थ—विरद=नेकनामी, प्रसिद्धि। कृपन करम=पापमय कर्म। राग=प्रेम। द्वेष=दुर्भाव। विधि=कर्म करने की शास्त्राज्ञा। अविधि='विधि'का विरोधीभाव'निषेध'। असुचि=अपवित्र। सुचि=पवित्र। जिन जितै सँभारो=जिसने जहाँ स्मरण किया। प्रभु=(संबोधन में)हे प्रभु। रागद्वेष......सँभारो=हे प्रभु! रागवश, द्वेषवश, विधि से वा अविधि से शुचिता से वा अशुचिता से जब किसी ने जहाँ कहीं आपको स्मरण किया (और आप की शरण हुआ तो)। अपन पन धारो = अपने पन की रक्षा करो (आप कृपानिधि कहलाते हो)। चितवत काहे न=मेरी ओर क्यों नहीं देखते?

भावार्थ—सरल ही है।

(नोट) 'जोपै' में 'पै' निश्चय सूचक अव्यय है। गनिका, व्याध (वाल्मीक) अजामिल की कथाएँ कहीं से विस्तृत रूप में पढ़ लेना चाहिये।

१७—राग विहागरो

जो पै राम-नाम-धन धरतो।
टरतौ नहीं जनम जन्मान्तर कहा राज-जम करतो॥
लेतो करि व्यौहार सवनि सौं मूल गाँठ में परतो।
भजन प्रताप सदाई घृत मधु, पावक परे न जरतो॥
सुमिरन—गोन वेद विधि बैठौ विप्र-परोहन भरतो।
'सूर' चलत बैकुंठ पेलि कै बीच कौन जो अरतो॥

शब्दार्थ—धरतो=एकत्र करता। राज-जम=यमराज। व्यौहार=बर्ताव (लेन देन)। मूल=मूल धन, पूंजी। गाँठ में परतो=अपने पास रहता। घृत=घी। मधु=मिसिरी। गोन=अन्न भरने के दो गठिये जिनमें = मन अन्न अटता है। परोहन=बैल, गाड़ी। पेलि कै=जोर से धक्का देकर। अरतो=आड़े आता, रोकता।

भावार्थ—जो तू (निश्चय पूर्वक) राम नाम रूपी धन एकत्र करता (राम नाम जपता) तो वह धन किसी जन्म में भी तेरे

पास से न जाता, और यमराज भी तेरा क्या कर लेते (कुछ न कर सकते)। उसी धन से तू सब के साथ सलूक भी कर लेता और तेरा मूल धन भी तेरे पास रहता। राम नाम के जप के प्रभाव से सदा ही घी मिसरी खाने को मिलते, और अग्नि में गिर जाने से भी न जलता। यदि तू राम नाम स्मरण की गोन अपने घर बैठा हुआ बेद विधि से ब्राह्मण रूपी गाड़ी में भरता (तू खुद राम नाम जपता और अन्य ब्राह्मणों से भी जप करवाता) तो तू सब को धक्का देकर वैकुंठ को जाता, ऐसा कौन था जो तुझे बीच में रोक सकता।

अलंकार—राम नाम धन, सुमिरन गोन, विप्र परोहन में रूपक।

(दोष)—'राज-जम' में विसन्धि दोष है।

(नोट) इस पद में राम नाम के जपने और दूसरों से जपवाने का महात्म्य कहा गया है।

१८—राग सारंग

तुम्हारी भक्ति हमारे प्रान।
छूटि गये कैसे जन जीवहिं ज्यों प्रानी बिनु प्रान॥

जैसे मगन नाद बन सारँग बधै बधिक तनु बान।
ज्यों चितवै ससि ओर चकोरी देखत ही सुख मान॥
जैसे कमल होत परफुल्लित देखत दरसन भान।
'सूरदास' प्रभु हरिगुन मीठे नित प्रति सुनियत कान॥

शब्दार्थ—नाद=राग, गान। सारँग=मृग। बधिक=शिकारी। भान=(सं० भानु) सूर्य। नित प्रति=प्रति दिन, रोज़ रोज़।

भावार्थ—सरल ही है।

अलंकार—पहली पंक्ति में हेतु (दूसरा)। ३, ४, ५ पंक्ति में उदाहरण।

(नोट) इस पद में श्रवण भक्ति दृढ़ाई गई है।

१९—राग धनाश्री

प्रभु मेरे अवगुन न बिचारो।
धरि जिय लाज सरन आये को रबिसुत त्रास निवारो॥
जो गिरिपति मसि घोरि उदधि में लै सुरतरु निज हाथ।
मम कृत दोस लिखैं बसुधा भरि तऊ नहीं मिति नाथ॥
कपटी कुटिल कुचीलि कुदरसन अपराधी मति हीन।
तुम्हहिं समान और नहिं दूजो जाहिं भजौं ह्वै दीन॥

जोग जग्य जप तप नहिं कीनो वेद विमल नहिं भाख्यो।
अति रसलुब्ध स्वान जूठनि ज्यों अनतै ही मन राख्यो॥
जिहिं जिहिं जोनि फिरौ संकटबस तिहिं तिहिं यहै कमायो।
काम क्रोध मद लोभ ग्रसित ह्वै बिषै परम बिष खायो॥
अखिल अनन्त दयालु दयानिधि अघमोचन सुखरासि।
भजन प्रताप नाहिनै जान्यों बँध्यो काल की फाँसि॥
तुम सरबग्य सबै बिधि समरथ असरन-सरन मुरारि।
मोह समुद्र 'सूर' बूड़त है लीजै भुजा पसारि॥

शब्दार्थ—अवगुण=दोष। विचारो=चित्त में धरो। रविसुत=यमराज। त्रासनिवारो=डर छोड़ा दीजिये, अभय कर दीजिये। गिरिपति=हिमालय। मसि=स्याही। सुरतरु=कल्प वृक्ष की लेखनी। मिति=हद, अन्त। रसलुब्ध=रसास्वादन का लोभी। स्वान=कुत्ता। परम विष=बड़ा चोखा ज़हर। अखिल=सर्वत्र व्यापी। अघमोचन=पापों से छोड़ाने वाले। नाहिनै=नहीं ही।

अर्थ—सरल ही है।

अलंकार—८ वीं पंक्ति में उदाहरण। 'मोह समुद्र' में रूपक।

(नोट) पंक्ति ३ व ४ में वही "असितगिरिसमस्यात" वाला भाव है।

———

२०—राग सारंग

प्रभु हौं सब पतितन को राजा।
पर निन्दा मुख पूरि रह्यो, जग यह निसान नित बाजा॥
तृसना देस रु सुभट मनोरथ, इन्द्रिय खड़्ग हमारे।
मंत्री काम कुमत दैबे को, क्रोध रहत प्रतिहारे॥
गज अहँकार चढ़यो दिग-विजयी, लोभ छत्र धरि सीस।
फौज असत-संगति की मेरी ऐसो हौं मैं ईस॥
मोह मदै बन्दी गुन गावत, मागध दोष अपार।
'सूर' पाप को गढ़ दृढ़ कीने मुहकम लाइ किंवार॥

शब्दार्थ—हौं=मैं। पतित=नीच कर्म करनेवाला। निसान=नौबत, नगाड़ा। तृसना=(सं० तृष्णा) अतृप्त इच्छा। कुमत=बुरी सलाह। प्रतिहार=द्वारपाल। असत-संगति=बुरे लोगों का साथ। ईश=राजा। मोह मदै=मोह और मद ही (ऐ=ही)। मागध=वे भाट जो वंश विरुदावली बखानते हैं। मुहकम=(फा०) मज़बूत। लाइ किंवार=किंवाड़े लगा कर।

भावार्थ—हे प्रभु मैं सब नीचों का राजा हूँ। अन्य जनों के मुख मेरी निन्दा से पूर्ण हैं यही संसार में मेरे द्वार की नौबत बजती है। तृष्णा ही मेरा देश है (जिस पर मैं राज्य करता हूँ) नाना प्रकार के मनोरथ ही मेरी सेना के योद्धा हैं, इन्द्रियाँ तलवार

हैं। काम ही कुमंत्र देने के लिये मेरा मंत्री है और क्रोध मेरा द्वारपाल है। अहंकार मेरा हाथी है, जिस पर चढ़ कर मैं दिग्विजय को निकलता हूँ, और लोभ का छत्र सिर पर धारण किए रहता हूँ। दुष्ट संगति की मेरी सेना है, मैं ऐसा राजा हूँ। मोह और मद ही वंदीजन हैं जो मेरी गुणावली गाते हैं, और मेरे अगणित दोष ही मागध हैं (जो वंश की प्रशंसा करते हैं)। सूरदास कहते हैं कि मज़बूत फाटक लगा कर मैंने पाप का किला वहुत दृढ़ कर लिया है।

अलंकार—सांग रूपक।

(नोट) इस पद में 'कार्पण्य' वर्णन का सिद्धान्त निवाहा गया है।

२१—राग केदारा

वन्दौं चरन सरोज तुम्हारे।
जे पदपदुम सदा सिव के धन, सिंधुसुता उर तें नहिं टारे॥
जे पदपदुम परसि भई पावन, सुरसरि दरस कटत अघ भारे।
जे पदपदुम परसि ऋषिपत्नी, बलि, नृग, व्याध पतित बहु तारे॥
जे पदपदुम रमत वृन्दावन अहि सिर धरि अगनित रिपु मारे।
जे पदपदुम परसि व्रजभामिनि सरवसु दै सुत सदन बिसारे॥

जे पदपदुम रमत पांडव दल, दूत भये सब काज सँवारे।
'सूरदास' तेई पदपंकज त्रिविध ताप दुखहरन हमारे॥

शब्दार्थ—सिंधुसुता = लक्ष्मी। ऋषि पत्नी = अहल्या। अहि = कालीनाग। व्याध = बाल्मीकि। त्रिविध ताप = देहिक, दैविक, भौतिक दुःख। व्रज भामिनि = व्रज की गोपियाँ। सदन = घर।

भावार्थ—सरल ही है।

अलंकार—चरण सरोज, पद पदुम, पद पंकज इत्यादि में 'रूपक'।

(नोट) १—इष्टदेव के चरणों की महिमा (गुण वर्णन) 'गोप्तृत्व वर्णन' में है।

२—तुलसीदास जी ने भी चरण वन्दना में विनय पत्रिका में एक पद कहा है जिसका आरम्भ यों है:—

"कबहिं दिखाइहौ हरि चरण"

२२—राग केदारो

बिनती सुनो दीन की चित दै कैसे तव गुन गावै।
माया नटिनि लकुट कर लीने कोटिक नाच नचावै॥

लोभ लागि लै, डोलत दरदर नाना स्वांग करावै।
तुमसों कपट करावत प्रभु जी मेरी बुद्धि भ्रमावै॥
मन अभिलाष तरंगनि करि २ मिथ्या निसा जगावै।
सोवत सपने में ज्यों सम्पति त्यों दिखाय बौरावै॥
महामोहनी मोह आतमा मन अघ माहिं लगावै।
ज्यों दूती पर वधू भोरि कै लै पर पुरुष मिलावै॥
मेरे तो तुम ही पति तुम गति तुम समान को पावै।
'सूरदास' प्रभु तुम्हरी कृपा बिनु को मो दुखन सिरावै॥

शब्दार्थ—लकुट=लकड़ी, छड़ी। (नोट) कथकादि किसी को नाचना सिखाते समय एक लकड़ी के इशारे से गति तालादि पर आ जाने को इंगित करते हैं, जैसे आजकल अँगरेज़ी बैंड बजवाते समय बैंडमास्टर एक लकड़ी से इशारा करता जाता है। लोभ लागि=लोभ से प्रेरित होकर। लै डोलत=लिए लिए फिरती है। दरदर=(फा०) द्वार द्वार। तरंग=उमंग। मन......करि करि=मन में इच्छाओं की उमंग उठा कर। मिथ्या निसा जगावै=व्यर्थ रात्रि भर जगाती है। बौरावै=बहलाती है। मोह आतमा=आत्मा को मोह में डालती है। पर वधू=पर स्त्री। भोरिकै=भोरा कर, झूठा लालच दिखाकर, धोखा देकर। सिरावै=खतम करै, मिटावै। पति=मालिक। गति=अन्तिम धेय।

(नोट) मेरे तो तुमही पति=भक्ति का एक यह भी

सिद्धान्त है कि सिवाय ईश्वर के कोई अन्य पुरुष है ही नहीं। यही सिद्धान्त 'सखी उपासना' की नीव (शृङ्गार उपासना की बुनियाद) है—देखिये भूमिका।

'गावै' क्रिया का कर्ता है 'दीन'—यह दीन तब गुण कैसे गावै।

भावार्थ—सरल ही है।

अलंकार—माया नटिनि में रूपक, ८ वीं पंक्तिमें उदाहरण। ६ वीं पंक्ति में तुल्ययोगिता तीसरी।

२३—राग टोड़ी

भगति बिनु सूकर कूकर जैसे।
बिग बगुला अरु गीध घूघुआ आय जनम लियो तैसे॥
ज्यों लोमरी बिलाव भुजंगम रहत कंदरनि वैसे।
तकैं न अवधि, न सुत दारा वे, उन्हें भेद कहो कैसे॥
जीव मारि कै उदर भरत हैं रहत असुद्ध अनैसे।
'सूरदास' भगवंत भजन बिनु जैसे ऊँट, खर, भैंसे॥

शब्दार्थ—बिग=(सं० वृक) बिगना, हुँढार। घूघुआ= उल्लू पत्ती। लोमरी=(सं० लोवा) लोखरी। भुजंगम=

(सं० भुज = टेढ़ा, गम = चलना) टेढ़ा चलनेवाला अर्थात् साँप। बैसे = बैठे। तकैं न अवधि = खाने पीने इत्यादि का समय नहीं देखते अर्थात् हर समय इन्द्रियों की तृप्ति में ही लगे रहते हैं। दारा = स्त्री। उन्हें भेद कहौ कैसे = उन्हें भेद समझने की शक्ति नहीं (बिगु, घुग्घू, वन बिलार, सर्प इत्यादि भूख लगने पर अपने ही बच्चों को खा डालते। ऊँट, खर, भैंसे, शूकर, कूकर इत्यादि अविचारी विषयी होते हैं)।

भावार्थ—सरल ही है।

अलंकार—उदाहरण।

(नोट) इस पद में भक्ति दृढ़ाने का उपदेश है। उदाहरण बहुत ज़ोरदार हैं।

२४—राग मलार

माधव जू ! यह मेरी इक गाइ।
अब आजु तें आप आगे दई लै आइये चराइ॥
है अति हरहाई हटकत हू बहुत अमारग जाति।
फिरत बेद बन ऊख उखारत सब दिन अरु सब राति॥
हित कै मिलै लेहु गोकुलपति अपने गोधन माँह।
सुख सोऊँ सुनि वचन तुम्हारे देहु कृपा करि बाँह॥

निधरक रहौं 'सूर' के स्वामी जन्म न पाऊँ फेरि।
मैं ममता रुचि सों जदुराई पहिले लेउ निवेरि॥

शब्दार्थ—गाइ=(सं० गो) प्रवृत्ति मार्ग की रुचि। आप आगे दई=आपको सौंप दी। हरहाई=बार-बार खेतों में जानेवाली। अमारग=कुपंथ। गोधन=गौओं का समूह। कृपा करि बाहँ देहु=कृपा करके मुझे सहायता करने का बचन दीजिये। मैं ममता='मैं मेरी' की भावना अर्थात् माया (यथा तुलसी) मैं अरु मोरि तोरि यह माया। जेइ बस कीन्हें जीव निकाया। निवेरि लेउ=छोड़ा लो।

भावार्थ—हे कृष्णजी! लीजिए यह मेरी एक गाय है (आप गाय चरानेवाले हैं, इसे भी अपनी गायों के साथ चराइये) अब आज से इसे आपके सुपुर्द करता हूँ, इसे आप चरा लाइये (परन्तु इसका स्वभाव बतलाए देता हूँ) यह गाय (प्रवृत्ति मार्ग की रुचि) बड़ी ही हरहाई है, हटकते रहने पर भी कुपंथ में दौड़ती है। और बेदों के बनों में जाकर रातों दिन ऊखें नष्ट करती है (वेदाज्ञानुसार कर्म मार्ग में लगी है)। हे गोकुल के राजा! कृपा करके आप इसे अपनी गायों में मिला लीजिए, ताकि मैं तुम्हारे बचनों के अनुसार (सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज) मैं सुख से सोऊं—बेफिकिर हो जाऊं—बस कृपा करके सहायता का बचन दीजिये। (ऐसा करने से) मैं बेखटके रहूँगा, हे सूर के

स्वामी (कृष्णजी) अब मेरा जन्म न हो (तो अच्छा है) अतः हे यदुराय ! मेरी इस प्रवृत्ति को—"मैं मेरी तेरी" की भावना को छोड़ा लो।

अलंकार—रूपकातिशयोक्ति।

(नोट) आत्म-निवेदन भक्ति का वर्णन है।

२५—राग धनाश्री

माधव ! मन मरजाद तजी।
ज्यों गज मत्त जानि, हरि तुमसों बात बिचारि सजी॥
माथे नहीं महावत सतगुरु अंकुस ग्यान टुर्‌यौ।
धावै अघ अवनी अति आतुर साँकर सुमग छुर्‌यौ॥
इन्द्री जूथ संग लिये विहरत, तृस्ना कानन माहे।
क्रोध सोच जल सों रति मानी काम भच्छ हित जाहे॥
और अधार नाहिं कछु सकुचत, भ्रम गहि गुहा रहै।
'सूर' स्याम केहरि, करुनामय कब नहिं बिरद गहै॥

शब्दार्थ—मरजाद = सीमा, हद। साँकर = शृङ्खल, जंजीर। जूथ = समूह (हथिनियों का) माहे = (सं० मध्ये) बीच में, में। जाहे = जिसको।

भावार्थ—हे माधव ! मेरे मन ने सीमा छोड़ दी है (सीमा उल्लंघन कर गया है)। उस मन को मस्त हाथी के समान समझ कर, हे हरि ! मैंने सोच विचार कर तुमसे बात कही है। सतगुरु रूपी महावत इसके (मन रूपी हाथी के) मस्तक पर नहीं है, ज्ञान रूपी अंकुश भी टूट गया है, और सुसङ्ग रूपी जंजीर से छूट कर, पाप रूपी पृथ्वी पर बड़ी तेज़ी से दौड़ता फिरता है। इन्द्री रूपी हथिनियों के झुंड को साथ लिये हुए तृष्णारूपी जंगल में विहार करता फिरता है। क्रोध की चिंता रूपी जल से ही प्रेम किए है (हाथी जब मस्ताता है तब पानी में ज्यादा रहता है) और उसको काम ही का भोजन रुचता है (काम बासना में फँसा रहता है) उसको बाँधने के लिये और कोई आधार (वृक्ष व मज़बूत खंभा) नहीं है, न वह किसी से दबता है, भ्रम रूपी गुफा ही में घुसा रहता है।

सूरदास कहता है, कि हे कृष्ण रूपी सिंह ! हे करुणामय ! आप कब नहीं अपने विरद की रक्षा करते ?—आप तो सदा ही अपने विरद की रक्षा करते आए हैं, अतः अब भी अपने भक्त को बचाने के लिये मेरे मन रूपी मस्त हाथी को सिंह रूप होकर परास्त करो।

अलंकार—सांग रूपक (समस्त में) दूसरी पंक्ति में 'हरि' शब्द का श्लेष बड़ा मजा दे रहा है। हरि का अर्थ

'सिंह' भी है। अंतिम पंक्ति में काकु बक्रोक्ति है।

(नोट) इस पद में सच्चा कार्पण्य वर्णन है।

२६—राग विलावल

माधो ! वै भुज कहाँ दुराये।
जिनहिं भुजनि गोवर्द्धन धार्‍यो सुरपति गर्व नसाये॥
जिनहिं भुजनि काली को नाथ्यो कमलनाल लै आये।
जिनहिं भुजनि प्रहलाद उबार्‍यो हिरन्याच्छ कों धाये॥
जिनहिं भुजनि दाँवरी बँधाये जमला मुकति पठाये।
जिनहिं भुजनि गजदंत उपार्‍यो मथुरा कंस ढहाये॥
जिनही भुजनि अघासुर मार्‍यो गोसुत गाय मिलाये।
तिहिं भुज की वलि जाय'सूर'जिन तिनका तोरि दिखाये॥

शब्दार्थ—दुराये = छिपाये। सुरपति = इन्द्र। नसाये = नष्ट किया। कमलनाल = नाल समेत कमल पुष्प। दाँवरी = रस्सी। जमला = जमलार्जुन (अर्जुन वृक्ष का जोड़ा, दो अर्जुन वृक्ष) मुकति = मुक्ति। गजदंत = कुवलया गज के दाँत। उपार्‍यो = उखाड़े। ढहाये = सिंहासन से गिराया (मार डाला) जिन तिनका तोरि दिखाए = जिन हाथों ने जरासंध और भीमसेन के युद्ध के समय एक तिनके को चीर कर भीम

को यह इशारा किया था कि इसी तरह जरासन्ध को चीर डालो।

अर्थ—सरल ही है।

(नोट) १—पंक्ति ५ में 'जमला' शब्द में न्यून पद दोष है। पंक्ति ६ में 'ढहाये' शब्द का प्रयोग कुछ खटकता सा है। अंतिम पंक्ति में 'तोरि दिखाये' के स्थान पर 'चीरि दिखाये' होता, तो अधिक अच्छा पाठ होता।

२—इस पद में इष्टदेव का 'गुण वर्णन' वाली कुंजी है।

३—तुलसीदासजी ने भी अपनी विनय पत्रिका में एक पद रामजी के कर कमलों की प्रशंसा में ऐसा ही कहा है जिसका आरम्भ यों है :—

"कबहुँ सो कर सरोज रघुनायक धरिहौ नाथ सीस मेरे"

२७—राग सारंग

माधव ! मोहि काहे की लाज।
जनम जनम ह्वै रहो मैं ऐसो अभिमानो बेकाज॥
कोटिक कर्म किये करुनामय या देही के साज।
निसिबासर विषयारस रुचि तें कबहुँ न आयों बाज॥

बहुत बार जल थल जग जायो भ्रमि आयो दिन देव।
औगुन की कछु सकुच न सङ्का परि आई यह टेव॥
अब अनखाय कहौं घर अपने राखो बाँधि बिचारि।
'सूर' स्वान के पालनहारे लावत है दिन गारि॥

शब्दार्थ—बेकाज=व्यर्थ, किसी काम का नहीं। या देही के साज=जिनके फल से यह देह मिली है। बाज न आयौं (फारसी मुहावरा है) छोड़ा नहीं, त्यागा नहीं। दिन=प्रति दिन, सदैव। देव=हे इष्टदेव। औगुन=(अर्द्धतत्सम) अव-गुण, दोष, पाप। सकुच=लज्जा। टेव=आदत, स्वभाव। अनखाय=क्रुद्ध होकर, बुरा मान कर। लावत है दिन गारि=प्रति दिन तुम्हें गालियाँ दिलवाता है। अपने घर बाँधि रखो=सालोक्य मुक्ति दो (बड़ा ही सुन्दर व्यंग है)।

भावार्थ—हे माधव! मुझे काहे की लाज है? मैं तो जन्म जन्म से ही ऐसा अहंकारी और निकम्मा जीव हूँ। इस देह को (मनुष्य देह को) पाने के लिये करोड़ों कर्म किये, पर अब यह देह पाकर भी विषय भोगों की रुचि को न छोड़ा। हे देव! मैं सदा ही जल और थल में अनेक योनियों में भ्रमण कर आया। (सदा पाप करता रहा) अतः पापों से न तो मैं लज्जित हूँ न डरता ही हूँ क्योंकि वैसी आदत ही पड़ गई है। अतः अब तो मैं क्रुद्ध होकर कहता हूँ कि हे सूरदास रूपी कुत्ते को पालनेवाले कृष्ण! यह कुत्ता तुम्हें रोज गालियाँ

दिलवाता है, अतः अपनी मर्यादा का विचार करके इसे अपने घर पर बाँध कर रखो।

अलंकार—रूपक।

(नोट) 'कार्पण्य' वर्णन का अति सुन्दर व्यंगमय ढंग है। यह सूरदास का कमाल है। तुलसीदास ने भी अपनी विनय पत्रिका में "जो लघुतहिं न भितैहो" कहकर इसी प्रकार का कमाल दिखलाया है।

२८—राग नट

प्रभु मेरे औगुन चित न धरो।
समदरसी प्रभु नाम तिहारो अपने पनहि करो॥
इक लोहा पूजा में राखत इक घर बधिक परो।
यह दुबिधा पारस नहिं जानत कंचन करत खरो॥
एक नदिया एक नार कहावत मैलो नीर भरो।
जब मिलिकै दोउ एकबरन भए सुरसरि नाम परो॥
एक जीव इक ब्रह्म कहावत 'सूरस्याम' झगरो।
अबकी बेर मोहिँ पार उतारो नहिँ पन जात टरो॥

शब्दार्थ—समदरसी = सब जीवों को समान समझने-वाला। दुविधा = भेद। खरो = शुद्ध। नार = नाला। पार

उतारो=तारो, मुक्त करो। नहिं पन जात टरो=नहीं तो आपकी समदरशी होने की प्रतिज्ञा भंग होने चाहती है।

भावार्थ—सरलही है।

(नोट) माया ईश न आपु कहँ जान कहिए सो जीव।
बंध मोक्ष प्रद सर्ब पर माया प्रेरक सीव॥

१—जो न तो माया को जाने, न ईश्वर ही को जान सके और न अपनी ही असलियत को समझ सके उसे 'जीव' कहते हैं।

२—जो बन्धन में डालनेवाला अथवा बन्धन से मुक्त कर देनेवाला है, सब से परे है (सर्व शक्तिमान है) और जो माया का प्रेरक है उसे ईश्वर कहते हैं।

३—सब दार्शनिक झगड़ों को छोड़ कर, सूरदास जी इस पद में समदर्शी प्रतिज्ञा को आधार बनाकर भगवान की दया को उत्तेजित करके मुक्ति मांगते हैं। इस पद में यह सिद्धान्त पुष्ट किया गया है कि जीव निज बल से कुछ नहीं कर सकता और ईश्वर सर्वशक्तिमान होने से सब कुछ कर सकता है।

——

२६—राग देवगंधारी

मोहिं प्रभु तुम सों होड़ परी।
ना जानों करिहौ जु कहा तुम नागर नवल हरी॥
पतित समूहनि उद्धरिवे को तुम जिय जक पकरी।
मैं जू राजिव नैननि दुरि गयो पाप-पहार दरी॥
एक अधार साधु संगति को रचि पचि कै सँचरी।
भई न सोचि सोचि जिय राखी अपनी धरनि धरी॥
मेरी मुकति विचारत हौ प्रभु पूँछत पहर घरी।
स्रम तें तुम्हैं पसीनो ऐहै कत यह जकनि करी॥
'सूरदास' विनती कहा विनवै दोसहिं देह भरी।
अपनो विरद सँभारहुगे तब यामें सब निनुरी॥

शब्दार्थ—होड़परी=बाज़ी लगी है (मैं अधिक पाप कर सकता हूँ कि तुम महा पापी को भी तार सकते हो, यह शर्त लगी है, देखें कौन जीतता है) जक पकरी=हठ की है। दरी=गुफा। रचि पचि कै=खूब अच्छी तरह से। सँचरी=संचार किया, वर्ता (की)। अपनी धरनि धरी=अपनी शक्ति भर मज़बूती से उसे पकड़ा। पहर घरी=समय। कत=क्यों। जकनि करी=ज़िद की है। निनुरी=निपटारा हो जायगा, फैसला हो जायगा।

भावार्थ—हे प्रभु अब तो मुझसे आपसे बाज़ी लगी है, (देखें कौन जीतता है) हे चतुर नव वयस्क कृष्ण! नहीं

जान पड़ता है कि आप क्या करेंगे (आप बालक हैं, मैं बुड्ढा पुराना खुर्राट पापी हूँ) पापियों के झुंडों के तारने की हठ तुमने की है। परंतु मैं (ऐसा चतुर हूँ कि) आप के कमल लोचनों की नजर बचाकर पाप पहार की कंदरा में छिप बैठा हूँ। तरने का एक मात्र आधार जो साधु संगति है, जिसमें मैं खूब अच्छी तरह से रहता था, सो उस संबन्ध में भी मन सोची बात न हुई, यद्यपि मैं ने उसे खूब मज़बूती से पकड़ा था, (अर्थात् साधु संगति भी छूट गई)। आप मेरी मुक्ति का विचार कर रहे हैं और पूंछते हो कि किस समय तुझे तार दूँ (जब कहै तब मुक्त कर दूँ) पर मैं कहता हूँ कि महाराज! मेरे तारने में आपको इतना परिश्रम करना पड़ैगा कि पसीना आजायगा, अतः क्यों ऐसी हठ करते हो। सूरदास कौनसी विनती करै (अपनी मुक्ति के लिये तुमसे कैसे कहै) क्योंकि मेरा सारा शरीर दोषों से ही भरा है। हाँ यदि आप अपने विरद को पकड़ोगे (विरद की लज्जा रखना चाहोगे) तो अलबत्ते निपटारा हो जायगा (अर्थात् मुझे मुक्त कर सकोगे)।

अलंकार—पाप पहारदरी में रूपक।

(नोट) प्रभु की करुणा को उत्तेजित करने का उत्तम ढंग है।

३०—राग रामकली

सरन गये को को न उबारयो ?
जब जब भीर परी भगतन पै चक्र सुदरसन तहाँ सँभारयो ॥
भयो प्रसाद जु अम्बरीष पै दुरवासा को क्रोध निवारयो ।
ग्वालन हेतु धरयो गोवर्धन प्रगट इन्द्र को गर्व प्रहारयो ॥
करी कृपा प्रहलाद भगत पै खंभ फारि उर नखन बिदारयो ।
नरहरि रूप धरयो करुना करि छिनक माँहि हिरनाकुस मारयो ॥
ग्राह ग्रसित गज को जल बूड़त नाम लेत तुरतै दुख टारयो ।
'सूर' स्याम बिनु और करै को रंगभूमि में कंस पछारयो ॥

शब्दार्थ—को को न उबारयो ? = किस किस को नहीं बचाया अर्थात् सब को बचाया है । भीर = संकट । प्रसाद = प्रसन्नता । गर्व प्रहारयो = घमंड तोड़ दिया । नखन = नाख़ूनों से । बिदारयो = फाड़ डाला । रंगभूमि = तमाशा देखने की जगह ।

भावार्थ—सरल ही है ।

(नोट) अंबरीष, प्रहलाद, गज इत्यादिक की कथाएँ समझ लो । इस पद में इष्ट का गुणगान और रक्षा पर अटल विश्वास वर्णित है ।

———

३१—राग धनाश्री

सबै दिन गये विषय के हेतु ।
देखत ही आपुन पौ खोयो केस भये सब सेत ॥
रुँध्यो स्वाँस मुख बैन न आवत चंद्रा लगीं सँकेत ।
तजि गंगोदक पिये कूपजल पूजत गाड़े प्रेत ॥
करि प्रमाद गोविन्द बिसारे बूड़्यौ सबनि समेत ।
'सूरदास' कछु खरचु न लागतु कृस्न सुमिरि किन लेत ॥

शब्दार्थ—विषय = इंद्रियसुख । हेत = वास्ते । आपुनपौ = अपनापन (अपना मनुष्यत्व) । चंद्रा लगीं = मरने का समय आ गया (ज्योतिषके मत से मरते समय चंद्रमा घातक होता है, उसे ही 'चंद्रालगना' बोलते हैं) सँकेत = कष्टदायक । गंगोदक = (सं० गंगा + उदक) गंगाजल । गाड़े प्रेत = कबरों में गड़े मुरदे । प्रमाद = मस्ती, भूल । किन सुमिरि लेत = क्यों नहीं भज लेता । खरच = व्यय, धन ।

भावार्थ—सरल ही है ।

अलंकार—'तजि गंगोदक पिये कूपजल' में ललित अलंकार है । भाव यह है कि 'हरिभजन छोड़ कर विषय में लगा रहा' इसी भाव का प्रतिविम्ब इन शब्दों में कहा गया है ।

———

३२—राग कान्हरो

सोइ रसना जो हरिगुन गावै।
नैननि की छवि यहै, चतुर सोइ जो मुकुंद दरसन हित धावै॥
निर्मल चित सो, सोई साँचो, कृस्न बिना जिहिं अवरु न भावै।
स्रवननि की जु यहै अधिकाई हरिजस नितप्रति स्रवननि प्यावै॥
कर तेई जु स्याम कों सेवैं चरननि चलि वृन्द्रावन जावै।
'सूरदास' है बलि बलि ताकी जो सन्तन सों प्रीति बढ़ावै॥

शब्दार्थ—मुकुंद=(मुक्ति देने वाले) भगवान कृष्ण। अवरु=(सं० अपर) कोई दूसरा। भावै=अच्छा लगै। अधिकाई=बड़ाई। तेई=वेही।

भावार्थ—बहुत सरल है।

(नोट) इस पद में इन्द्रियों का साफल्य वर्णन है। पिछले पद में इंन्द्रियसुख द्वारा नर शरीरका व्यर्थ होना कहा गया है। इसमें उनके द्वारा नर शरीर की सफलता वर्णित है।

अलंकार—प्रथम पंक्ति में 'विधि' अलंकार है। अन्य पंक्तियों में भी विधि अलंकार माना जा सकता है।

———

३३—राग गौरी

हरिदासनि की सबै बड़ाई।
अंबरीष हित द्विज दुरवासा चक्र छाँड़ि, कै कूक पराई॥
दानव दुष्ट असुर को बालक ता हित सब मरजादा ढाई।
भगतराज कुंती के सुत हित रथ चढ़ि आपुन लीनि लड़ाई॥
सिव ब्रह्मा जाको बर दीनों अन्त सवनि की खोज कढ़ाई।
हरिपद कमल प्रताप तेज तें ध्रुव पदवी लै सिखर चढ़ाई॥
अजामील गनिकारत द्विजसुत सुत सुमिरत जम त्रास हटाई।
गज दुख जानि तबहिं उठि धाये ग्राह मुखनि ते बिपति छोंड़ाई॥
कौरव राज-पंथ रचना करि श्रीपति को शोभा दिखराई।
आपुन बिदुर सदन पगु धारे सदा सुभाव साधु सुखदाई॥
सकल लोक कीरति भलि गावै हरि जन प्रेम निसान उड़ाई।
कहँ लौं कहों कृपासागर को 'सूरदास' नाहिन सुघराई॥

शब्दार्थ—कै कूक = कूककर (चिल्लाकर)। दानव दुष्ट असुर को बालक = राजा बलि। मरजादा ढाई = प्रतिष्ठा छोड़ कर भिक्षा माँगी। कुंती के सुत = अर्जुन। शिव···वर दीन्हों = रावण (लंकापति)। अन्त = अन्त में। सवनि की खोज कढ़ाई = सवों के बरदानों की क़लई खोलदी कि इनके दासोंकी क्या गति होती है। सिखर = सर्वोच्च स्थान। गनिकारत = वेश्या-गामी। कौरव = दुर्योधन। कौरव·····दिखराई = जब श्रीकृष्ण

दूत बन कर पांडवों से संधि कराने के लिये, दुर्योधन के पास गए थे, तब दुर्योधन ने राज मार्ग और तोरणादि सजाकर उनका सम्मान प्रदर्शित किया था, परंतु कृष्ण ने दुर्योधन के यहाँ भोजन न करके बिदुर के यहाँ भोजन किये थे। हरि= कृष्ण। हरिजन प्रेम निशान उड़ाई=श्रीकृष्ण भगवान सदा अपने दास के प्रेम की ही पताका उड़ाते हैं अर्थात् अपने दास की प्रतिष्ठा बढ़ाकर उसका सुयश फैलाते हैं। सूरदास नाहिन सुघराई=सूरदास में भी कोई अच्छा गुण नहीं है, पर इस दास को भी कृष्ण जी ने जग में प्रतिष्ठा दिलाई ही दी, अतः ऐसा कृपा सागर कौन है (कोई नहीं है)।

अलंकार—पंक्ति ३,५, में पर्यायोक्ति है।

३४—राग सारंग

हरि हौं सब पतितन को नायक।
को करि सकै बराबरि मेरी और नहीं कोउ लायक॥
जैसो अजामेल को दीनो सोइ पटो लिखि पाऊँ।
तौ बिस्वास होइ मन मेरे औरो पतित बुलाऊँ॥
यह मारग चौगुनो चलाऊँ तो पूरो ब्योपारी।
बचन मानि लै चलौं गाँठि दै पाऊँ सुख अति भारी॥

यह सुनि जहाँ तहाँ तें सिमिटैं आइ होइँ इक ठौर।
अब की तौ अपनी लै आयौं, बेर बहुरि की और॥
होड़ाहोड़ी मन हुलास करि किये पाप भरि पेट।
सबै पतित पाँयन तर डारौं इहै हमारी भेंट॥
बहुत भरोसो जानि तुम्हारो अघ कीन्हे भरि भाँड़ो।
लीजै नाथ निबेरि तुरंतहिं 'सूर' पतित को टाँड़ो॥

शब्दार्थ—नायक=सरदार, नेता। पटो=पट्टा, अधिकार-पत्र। ब्यौपारी=सौदागर। गाँठिदै=मज़बूती से बाँधकर। सिमिटैं=मिलैं जुलैं। अब की तो अपनी लै आयौं=अब की पारी तो अपनी ही वस्तुएँ (सौदा) लाया हूँ। बेर बहुरि की और=दूसरी बार और भी सौदागरों की टोली लिवा लाऊँगा। होड़ाहोड़ी=दूसरों की स्पर्द्धा करके। भरि पेट=खूब छक कर, इच्छा भर। भेंट=नज़राना। भाँड़ो भरि=मटकाभर (बहुत अधिक) निबेरि लीजै=छाँट कर पसंद कर लीजिये। पतित=पापी। टाँड़ो=बनजारा की बरदी।

(नोट) पहाड़ी देशों में बैलों पर सौदा लाद कर बेंचने को ले जाते हैं, एक महाजन सैकड़ों बैल लादता है। इसी समूह को 'टाँड़ो' कहते हैं। उस समूह के नेता को 'नायक' कहते हैं। उस देश के राजा के आज्ञा-पत्र के बल पर वह यह काम करता है। उस आज्ञा-पत्र को 'पट्टा' कहते हैं। इसीका रूपक इस पद में है।

सूरदास ने अपने को पापियों का नायक मान कर ऐसा रूपक बांधा है। कहने का भाव यह है पहले मेरे पापों की सौदा कर लो, तो फिर मैं और भी सौदागरों (पापियों) को तुम्हारे पास लिवा लाऊंगा—अर्थात् मुझको मुक्त होते देख और भी पापी आपकी भक्ति करेंगे।

३५—राग केदारो

है हरि नाम को आधार।
और यहि कलिकाल नाहिन रह्यो विधि ब्यौहार॥
नारदादि सुकादि संकर कियो यहै बिचार।
सकल श्रुति-दधि मथत पायो इतनोई घृत सार॥
दसहु दिसि गुन कर्म रोक्यो मीन को ज्यों जार।
'सूर' हरि को भजन करतहिं मिटि गयो भव भार॥

शब्दार्थ—आधार = निश्चित भरोसा, आश्रय। बिधि = मुक्ति का बिधान। ब्यौहार = कृत्य। सुक = शुकदेव जी। श्रुति दधि = बेदरूपी दही। गुन = त्रिगुणात्मक माया। जार = जाल। भव = संसार। भार = बोझा। भव भार = संसार का बोझा अर्थात् कर्मानुसार जन्म-मरण।

भावार्थ—सरल ही है।

अलंकार—'श्रुतिदधि' में रूपक। ५ वीं पंक्ति में उदाहरण। ६ वीं पंक्ति में हेतु।

बाल-लीला

१—राग रामकली

हौं एक बात नई सुनि आई।
महरि जसोदा ढोटा जायो घर घर होत बधाई॥
द्वारे भीर गोप गोपिन की महिमा बरनि न जाई।
अति आनंद होत गोकुल में रतन भूमि सब छाई॥
नाचत तरुन वृद्ध अरु बालक गोरस कीच मचाई।
'सूरदास' स्वामी सुख-सागर सुंदर स्याम कन्हाई॥

शब्दार्थ—हौं=मैं। बात=खबर। महरि=(आदर सूचक शब्द) श्रीमती, महाशया। ढोटा=पुत्र। महिमा=अधिकता। रतन भूमि सब छाई=इतने हीरे मोती लुटाए गए हैं कि वे रत्न सारी पृथ्वी पर छितरे पड़े हैं। तरुन=जवान। गोरस=दूध दही।

अर्थ—सरल ही है।

अलंकार--उदात्त (रतन भूमि सब छाई, गोरस कीच मचाई में)

२—राग रामकली

हौं सखि नई चाह इक पाई।
ऐसे दिनन नंद के सुनियत उपजे पूत कन्हाई॥
बाजत पनव निसान पंचविधि रुंज, मुरज, सहनाई।
महर महरि ब्रज हाट लुटावत आनँद उर न समाई॥
चलौ सखी हमहूँ मिलि जैये वेगि करौ अतुराई।
कोउ भूषन पहिस्यो कोउ पहिरति कोउ वैसेहि उठि धाई॥
कंचन थार दूब दधि रोचन गावत चलीं बधाई।
भाँति भाँति बनि चलीं जुवतिगन यह उपमा मोपै नहिं आई॥
अमर विमान चढ़े नभ देखत जय धुनि सबद सुनाई।
'सूरदास' प्रभु भगत हेतु हित, दुष्टन के दुखदाई॥

शब्दार्थ—चाह=खबर, समाचार। ऐसे दिनन=बुढ़ापे में। पनव=ढोल। निसान=नगाड़े। पंचविधि=पांच मंगल वाद्य (तंत्री, ताल, झाँझ, नगारा और तुरही)। रुंज=झाँझ। मुरज=पखावज। सहनाई=फूंक कर बजाया जानेवाला एक

बाजा (काशी की शहनाई बहुत प्रसिद्ध है)। हाट लुटावत = बाजार लुटवाते हैं (यह भी दान और बखशिश का एक ढंग है कि गरीबों द्वारा बाजार लुटवा दी, जिसको जो भाया लूट ले गया, फिर लुटवाने वाले की ओर से व्योपारियों को दाम भर दिया गया)। वेगि करौ अतुराई = खूब जल्दी करो, अति शीघ्र चलो। दधि = दही। रोचन रोरी (पीसी हुई हल्दी)। मोपै = मुझसे, मुझको। अमर = देवता। जयधुनि = जय-जयकार की ध्वनि। हेतु हित = भलाई के लिये।

(नोट) मंगल समय में जैसे पांच प्रकार के बाजे बजते हैं, वैसे ही पंचध्वनि भी होती है—वेदध्वनि, बन्दीध्वनि, जयध्वनि शंखध्वनि और निशानध्वनि। यहां पंच शब्द की तो विवेचना स्वयं कवि ने कर दी है—नाम लिख दिये हैं। परन्तु पंचध्वनि को केवल जयध्वनि कहकर सूचित किया है। सुन्दर स्वाभाविक वर्णन है।

भावार्थ—सरल है।

अलंकार—"भाँति भाँति……आई"। इस कथन में 'धर्मोपमानवाचक लुप्ता उपमा है।

३—राग धनाश्री

आजु नन्द के द्वारे भीर।
एक आवत एक जात बिदा होइ एक ठाढ़े मन्दिर के तीर॥
कोउ केसर कोउ तिलक बनावत कोऊ पहिरत कंचुक चीर।
एकन को दै दान समरपत एकन को पहिरावत चीर॥
एकन को भूषन पाटंबर एकन को जु देत नग हीर।
एकन को पुहुपन की माला एकन को चन्दन घसि बीर॥
एकन को तुलसी की माला एकन को राखत दै धीर।
'सूरस्याम' घनस्याम सनेही धन्य जसोदा पुन्य सरीर॥

शब्दार्थ—भीर = जमाव। तीर = एक ओर, निकट। कंचुक = कुरता, अँगरखा इत्यादि। चीर = चीरा, पगड़ी। समरपत = देते हैं। भूषन = गहने। पाटंवर = (सं० पाट + अंबर) रेशमी कपड़ा। नग = रत्न। हीर = हीरा। पुहुप = पुष्प, फूल।

(नोट) बड़ाही स्वाभाविक वर्णन है।

भावार्थ—सरल ही है।

———

४—राग धनाश्री

जसोदा हरि पालने झुलावै।
हलरावै दुलराइ मल्हावै जोइ सोई कुछ गावै॥

मेरे लाल की आउ निंदरिया काहे न आनि सुवावै।
तू काहे न बेगि सी आवै तोको कान्ह बुलावै॥
कबहुँ पलक हरि मूँदि लेत हैं कबहुँ अधर फरकावै।
सोवत जानि मौन ह्वै रहि रहि करि करि सैन बतावै॥
इहि अंतर अकुलाइ उठे हरि जसुमति मधुरे गावै।
जो सुख 'सूर' अमर मुनि दुरलभ सो नँदभामिन पावै॥

शब्दार्थ—पालना = बच्चों का झूला। हलरावै = हाथ में लेकर हलाना। दुलराइ = प्यार करके। मलहावै (सं० मलह = गोस्तन) स्तन से लगाना, दूध पिलाना। निंदरिया = निद्रा। बेगिसी = जल्दी से। इहि अंतर = इसी बीच में, इतने में। अकुलाइ उठे = चौंक पड़े। नन्दभामिनि = नन्द की स्त्री, यशोदा।

भावार्थ—सरल है।

(नोट) अधर फरकावै, अकुलाइ उठे—ये दोनों बातें छोटे बच्चों को प्राकृतिक क्रियाएं हैं। बच्चे और माता की प्रकृति का बड़ा ही सुंदर स्वाभाविक वर्णन है।

अलंकार—अन्तिम लाइन में सम्बन्धातिशयोक्ति।

५—राग धनाश्री

देखो यह विपरीत भई।
अद्भुत रूप नारि करि आई, कपट हेत क्यों सहै दई॥

कान्है लै जसुमति कोरा तें रुचि करि कंठ लगाई।
तब वह देह धरी जोजन लौं स्याम रहे लपटाई॥
बड़े भाग हैं नन्द महर के बड़ भागिन नँदरानी।
'सूर' स्याम उर ऊपर पाए यह सब घर घर जानी॥

शब्दार्थ—विपरीत=उलटी बात (बच्चे को मारने आई थी सो आपही मारी गई) कपट हेत क्यों सहै दई=कपट की प्रीति ईश्वर कैसे सहन कर सकता है। कपटमय प्रेम (भक्ति) ईश्वर को नहीं भाता। कोरा=(सं० क्रोड़) गोद। जोजन=चार कोस की लम्बाई। उर ऊपर पाए=पूतना की छाती (खेलते) पाए गए। घर घर जानी=घर घर में खबर फैल गई।

(नोट) यह पद 'पूतनावध' लीला है।

अर्थ—सरल है।

———

६—राग बिलावल

चरन गहे अँगुठा मुख मेलत।
नंद घरनि गावति हलरावति पलना पर किलकत हरि खेलत॥
जो चरनारबिंद श्रीभूषन उरते नेकु न टारति।
देखौं धौं का रसु चरनन मैं मुख मेलत करि आरति॥

जा चरनारबिंद के रस को सुर नर करत बिबाद।
यह रस तो है मोको दुरलभ ताते लेत सवाद॥
उछलत सिंधु, धराधर काँप्यो, कमठपीठि अकुलाइ।
सेस सहसफन डोलन लागे हरि पीवत जब पाइ॥
बढ्यो बृच्छ वर, सुर अकुलाने गगन भयो उतपात।
महा प्रलय के मेघ उठे करि जहाँ तहाँ आघात॥
करुना करी छाँड़ि पगु दीनो जानि सुरन मन संस।
'सूरदास' प्रभु असुर निकंदन दुष्टन के उर गंस॥

शब्दार्थ—अँगुठा = पैर का अँगूठा। नन्द घरनि = यशोदा। श्रीभूषन = लक्ष्मी के भूषण हैं। मेलत = डालते हैं। करि आरति = बड़े शौक से। धराधर = पर्वत (मंदराचल)। बृच्छ-वर = अक्षयबट। आघात = गर्जन। संस = भय। गंस = गाँसी। दुष्टन के उर गंस = दुष्टों के हृदय में गाँसी समान चुभनेवाले।

(नोट) इस पद को समझने के लिये पहले मार्कंडेय की प्रलयवाला प्रसंग पढ़ लेना चाहिये। एक समय मार्कंडेय मुनि ने तप करके भगवान से यह वरदान माँगा था कि मुझे प्रलय का दृश्य दिखलाइये। भगवान ने (मायाकृत) प्रलय का दृश्य उपस्थित किया। उस समय सर्वत्र जलही जल था। जब मार्कंडेय जी तैरते-तैरते थक गए तब देखा कि (प्रयाग स्थानपर) अक्षयवट के एक पत्र पर बालमुकुंद रूप से भगवान लेटे हैं और अपने पैर का अँगूठा पी रहे हैं। रक्षा के लिये विनय की

और भगवान ने वह दृश्य समेट लिया। इस अवतार में जब श्रीकृष्ण अँगूठा पीने लगे, तब सब को भय हुआ कि पुनः वही प्रलय उपस्थित होगी क्या ?

भावार्थ—पैर पकड़ कर श्रीकृष्ण जी अपना अँगूठा मुख में डाल रहे हैं। कभी तो यशोदा गाती है, उन्हें गोदी में लेकर हिलाती है, कभी किलक किलक कर वे पालने पर खेलते हैं। (श्रीकृष्ण किस विचार से पैर का अँगूठा मुख में डालते हैं) जो चरण लक्ष्मी के भूषण हैं, जिन्हें लक्ष्मी सदा अपने हृदय से लगाए रहती हैं, उन चरणों में क्या रस है, ज़रा मैं भी तो देखूं, इस विचार से बड़े शौक से अँगूठा मुख में डालते हैं जिस चरण के रस के लिये सुर नर मुनि झगड़ते हैं, वह रस (अन्य रूप से, बालरूप को छोड़ कर) मुझे दुर्लभ हैं, इसी विचार से मानों उसका रस चखते हैं। अँगूठा पीते देख सब को मार्कंडेय-प्रलय का स्मरण आया और समुद्र में ऊँची लहरें उठीं, पहाड़ कँप गए, कमठ की पीठ व्याकुल हो गई, शेषनाग के हज़ारों फण डोलने लगे (ये सब प्रलय के चिन्ह हैं)। प्रयाग का अक्षयवट बढ़ने लगा। (क्योंकि यह वट प्रलय जल में डूबता नहीं) देवता व्याकुल हुए, आकाश में उत्पात होने लगा। महा प्रलय के मेघ गर्जन कर उठे। तब कृष्ण जी ने देवों के मन में भय हो रहा है ऐसा समझ कर पैर छोड़ दिया। सूरदास कहते हैं कि प्रभु (कृष्ण जी) तो असुरों को मारने

वाले और दुष्टों के हृदय में गाँसी के समान चुभनेवाले हैं (वे अपने सेवकों और सज्जनों को भयभीत नहीं करते)

अलंकार—पंक्ति ३ से ६ तक गम्योत्प्रेक्षा, ७ से १० तक स्मरण।

(नोट) बहुत सुन्दर कल्पना है।

७—राग बिलावल

जसुमति मन अभिलाष करै।
कब मेरो लाल घुटुरुवन रेंगै कब धरनी पग द्वैक धरै॥
कब द्वै दंत दूध के देखौं कब तुतरे मुख बैन झरै।
कब नंदहि कहि बाबा बोलै कब जननी कहि मोहि ररै॥
कब मेरो अँचरा गहि मोहन जोइ सोइ कहि मोसों झगरै।
कब धौं तनक तनक कछु खैहै अपने कर सों मुखहिं भरै॥
कब हँसि बात कहैगो मोसों छवि देखत दुख दूर टरै।
स्याम अकेले आँगन छाँड़े आपु गई कछु काज घरै॥
एहि अंतर अँधवाइ उठी इक गरजत गगन सहित थहरै।
'सूरदास' व्रज लोग सुनत धुनि जो जहँ तहँ सब अतिहि डरै॥

शब्दार्थ—घुटुरुवन=हाथों और घुटनों के बल। रेंगै=(सं० रिंगण) चले। तुतरे बैन=तोतली बोली के शब्द।

झरै=निकलेंगे। ररै=रटैगा, कहैगा। अँधवाइ=आँधी। थहरै=काँपै।

भावार्थ--सरल ही है। इस पद में तृणावर्त वध लीला का कुछ प्रसङ्ग है। शेषांश छूट गया है।

(नोट) वात्सल्य रस की अभिलाषाओं का बहुत सुन्दर वर्णन है। इसीसे यह पद संग्रह में लिया गया।

(विशेष) तोतली बोली—प्राकृतिक बात है कि बच्चों से प्रथमतः कवर्ग, चवर्ग और टवर्ग के व्यंजनों का उच्चारण नहीं होता, सर्व प्रथम पवर्ग तदनंतर तवर्ग के अक्षरों का उच्चारण होने लगता है। जब बच्चे प्रथम तीन वर्गों के अक्षरों के बदले क्रम से तवर्ग के अक्षरों का उच्चारण करके कुछ बोलते हैं, तब उसी बोली को तोतली (अर्थात् "तवर्ग के नीचे की" बोली कहते हैं। जैसे :—

बच्चे से	कहलाइये	'कमल'	तो वह	कहैगा।	'तलम'।
"	"	गङ्गा	"	"	दंदा
"	"	चाचा	"	"	ताता
"	"	जिजिया	"	"	दिदिया
					इत्यादि

अर्थात् कवर्ग के पहले अक्षर के बदले तवर्ग का पहला अक्षर, तीसरे के बदले उसी तवर्ग का तीसरा अक्षर। चवर्ग

के पहले अक्षर के बदले तवर्ग का पहला अक्षर, तीसरे के बदले तवर्ग का तीसरा अक्षर कहैगा। इसी प्रकार टर टर को तर तर और ढाल को धाल बोलेगा।

इसी बोली को तोतली बोली कहते हैं।

८—राग धनाश्री

हरि किलकत जसुदा की कनियाँ।
निरखि निरखि मुख हँसति स्याम को मो निधनी के धनियाँ॥
अति कोमल तनु स्याम को बार बार पछितात।
कैसौ बच्यो जाउँ बलि तेरी तृनावर्त के घात॥
ना जानौ धौं कौन पुन्य तें को करि लेत सहाइ।
वैसो काम पूतना कीनो इहि ऐसो करो आइ॥
माता दुखित जानि हरि बिहँसे नान्हीं दँतुरि दिखाइ।
'सूरदास' प्रभु माता चित में दुख डार्यो बिसराइ॥

शब्दार्थ—कनियाँ=(सं० कन्ध) गोदी। निधनी=निर्धन, गरीब। धनियाँ=धनी, मालिक। तृनावर्त=बवंडर। घात=चोट। नान्हीं=छोटी। दँतुरि=दाँत (बच्चों के दूध के दाँत)। बिसराइ डार्यो=भुलवा दिया।

भावार्थ—सरल ही है।

६—राग धनाश्री

सुत मुख देखि जसोदा फूली।
हरषित देखि दूध की दँतियाँ प्रेम मगन तनु की सुधि भूली॥
बाहिर ते तब नंद बुलाए देखौ धौं सुन्दर सुखदाई।
तनक तनक सी दूध की दँतियाँ देखौ नैन सुफल करो आई॥
आनँद सहित महर तब आए मुख चितवत दोउ नैन अघाई।
'सूर' स्याम किलकत द्विज देख्यो मनो कमल पर बीजु जमाई॥

शब्दार्थ—फूली = हर्षित हुई। धौं = तो (यहां यह शब्द बात पर ज़ोर देने के लिये है जैसे अंगरेजी में 'do' शब्द आता है। (देखो धौं = Do see)। नैन सुफल करो = नेत्रों के पाने का तात्पर्य पूरा कर लो (नेत्रों का मुख्य विषय है सौन्दर्य को देखना। यहां भाव यह है कि दँतियाँ अति सुन्दर हैं) महर = नन्दजी। अघाई = छक कर, इच्छा भर। द्विज = दाँत। बीजु = बिजली। जमाई = जड़ी है।

भावार्थ—सरल है।

अलंकार—('फूली' में रूढ़ि लक्षणा) अन्तिम पंक्ति में उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा।

———

१०—राग बिलावल

आजु भोर तमचुर की रोल ।
गोकुल में आनंद होत है मंगल धुनि महराने टोल ॥
फूले फिरत नंद अति सुख भयो हरषि मँगावत फूल तमोल ।
फूली फिरत जसोदा घर घर उबटि कान्ह अन्हवाइ अमोल ॥
तनक बदन, दो तनक तनक कर, तनक चरन पोछत पटझोल ।
कान्ह गले सोहै कँठमाला, अंग अभूषन अँगुरिन गोल ॥
सिर चौतनी दिठौना दीने आँखि आँजि पहिराइ निचोल ।
स्याम करत माता सों झगरो अटपटात कलबल कर बोल ॥
दोउ कपोल गहि कै मुख चुंबति बरष दिवस कहि करत कलोल ।
'सूर' स्याम व्रज जन-मन-मोहन बरष गांठि को डोरा खोल ॥

शब्दार्थ—भोर = सबेरे, तड़के। तमचुर की रोल = मुर्गा बोले से । तमचुर = (सं० ताम्रचूड़) मुर्गा । मंगलधुनि = मंगल सूचक पांच ध्वनियाँ (देखो पद नं० २) महराने टोल = अहीरों के मोहल्ले में । फूले फिरत = हर्षित फिरते हैं । तमोल = पान । अन्हवाय अमोल = सिरसे स्नान कराके (आमौलि + स्नान) । पट झोल = अंचल । कंठमाला = कठुला । गोल = छुल्ला । चौतनी = चौगोसिया टोपी। दिठौना = कुदृष्टि निवारक कज्जल बिंदु जो माताएँ बच्चों के कपोल में लगाती हैं। निचोल = कपड़े। अटपटात = साफ शब्दों में नहीं कह सकते। कलबल = अस्पष्ट।

बरष दिवस = वर्ष गाँठ का दिन। कलोल = चुहलवाजी। बरष गाँठि को डोरा खोल = वर्षगाँठ का डोरा जो गले में पहनाया गया था, उसे खोलते हैं (खोलकर फेंकना चाहते हैं)।

(नोट) वर्षगाँठ के उत्सव का वर्णन है। 'फूले फिरत' में रूढ़ि लक्षणा है।

भावार्थ—शब्दार्थ बल से तुम स्वयं निकालो।

११----राग धनाश्री

कान्ह कुँवर को कनछेदनो है हाथ सुहारी भेली गुर की।
बिधि बिहँसत हरि हँसत हेरि हरि जसुमति के धुकधूकी उरकी॥
रोचन भरि लै देत सींक सों स्रवन निकट अतिही चातुर की।
कंचन के द्वै दुर मँगाइ लिये कहीं कहा छेदनि आतुर की॥
लोचन भरि गये दोउ मातन के कनछेदन देखत जिय मुरकी।
रोवत देखि जननि अकुलानी लियो तुरत नौवा को घुरकी॥
हँसत नंद जुवती सब बिहँसी झमकि चली सब भीतर दुरकी।
'सूरदास' नँद करत बधाई अति आनँद बाला ब्रजपुर की॥

शब्दार्थ—सुहारी = पूड़ी। भेली = डली। गुर = गुड़। धुकधुकी = धड़कन। दुर = बाली। आतुर की = शीघ्रता से। दोउ माता = रोहिणी और यशोदा। जिय मुरकी = मन में कष्ट

हुआ। नौवा का घुरुक लिया = नाऊ को घुड़की दी (कृष्ण को बहलाने के लिये)। झमकि = शीघ्रता से। ढुरकि चली = धीरे धीरे गईं। बाला = स्त्रियाँ। व्रजपुर = गोकुल।

भावार्थ—कुँवर कन्हैया का कनछेदन है, उनके हाथ में पूड़ी और गुड़ की डली दी गई है। (यह लीला देखकर आश्चर्य से) ब्रह्मा और विष्णु जी हँसते हैं, और यशोदा की छाती धड़कने लगी। कान के निकट सींक से बड़ी चतुराई से रोचना लगाया गया (कान की लौ में रोचना मल देने से कान की कोचिया मुलायम हो जाती है और छेदने से कष्ट कम होता है) सोने की दो बालियाँ मँगाईं (और कान छेद दिये गये) कान छेदने की फुरती को मैं क्या वर्णन करूँ। यह घटना देखते (देख न सकने के कारण) दोनों माताओं के नेत्रों में आँसू आगये (मातृ हृदय कितना कोमल होता है) उन्होंने मुख फेर लिया। (कृष्ण रो उठे) उनको रोते देख माताएँ व्याकुल हो गईं और (कृष्ण की मनुहारि करने को) नाऊ को घुड़की दी (कि तूने बच्चे के कान क्यों छेद दिये, देख तुझे पीटती हूँ)। कृत्य पूर्ण हो जाने पर यशोदा हँसने लगीं (आनंदित हुई) उनको हँसते देखकर सब स्त्रियाँ मुसुकुराने लगीं, तदनन्तर सब धीरे धीरे घर के भीतर चली गईं। इसके अनन्तर नंदजी अन्य मंगल काज (दान दक्षिणा, इनाम बखशीश इत्यादि) करने लगे और गोकुल की स्त्रियाँ अत्यन्त खुशी हुईं।

(नोट) इस पद में उस समय के कृत्यों तथा भावों का बड़ा ही सुन्दर चित्रण है। मातृ हृदय का तो अनोखा ही फोटो खींचा गया है। (धन्य सूरदास)

१२—राग धनाश्री

कहाँ लौं बरनो सुन्दरताई।
खेलत कुँवर कनक आँगन में नैन निरखि छवि छाई॥
कुलहि लसत सिर स्याम सुभग अति बहुविधि सुरँग बनाई।
मानो नव घन ऊपर राजत मघवा धनुष चढ़ाई॥
अति सुदेस मृदु चिकुर हरत मन मोहन मुख बगराई।
मानो प्रगट कंज पर मंजुल अलि अवली फिरि आई॥
*नील सेत पर पीत लालमनि लटकन भाल लुनाई।
सनि गुरु-असुर देव गुरु मिलि मनौ भौम सहित समुदाई॥
दूध दंत दुति कहि न जाति अति अद्भुत एक उपमाई।
किलकत हँसत दुरत प्रगटत मनौ घन में बिज्जु छपाई॥
खंडित बचन देत पूरन सुख अलप जलप जलपाई।
घुटुरुन चलत रेनु तनु मंडित 'सूरदास' बलिजाई॥

शब्दार्थ—कुलही=बच्चों की टोपी। मघवा धनुष=इंद्र-धनुष (मदाइन)। सुदेस=सुंदर। मृदु=कोमल। चिकुर=बाल। बगराई=फैल कर। मंजुल=सुन्दर। अलि=भौंरे।

अवली=पंक्ति, समूह । लटकन=बोरा, घुँघुरू । लुनाई= सुन्दरता । गुरु असुर=असुर गुरु (शुक्र)। देव गुरु= वृहस्पति । भौम=मंगल । समुदाय=समूह । बिज्जु=बिजली । खंडित=अस्पष्ट । अलप जलप जलपाई=थोड़ी थोड़ी वार्ता का करना । रेनु=धूल । मंडित=भूषित ।

भावार्थ—कृष्ण की सुन्दरता मैं कहाँ तक वर्णन करूँ । कुमार कृष्ण नंद के कनक आँगन में खेलते हैं, उन्हें देख कर नेत्रों में छवि छा जाती है (सर्वत्र छवि ही छवि दिखाई पड़ती है) अनेक रंगोंवाली सुंदर टोपी श्याम के सिर पर ऐसी लसती है माना नवीन श्याम बादल पर इंद्रधनुष रख दिया गया हो । कृष्ण के मुख पर फैलकर अति सुंदर कोमल बाल मन को हरते हैं और ऐसे जान पड़ते हैं माना प्रत्यक्ष ही कमल के ऊपर पंक्ति-बद्ध भ्रमरावली हो । भाल पर नील, सफ़ेद और पीले तथा लाल मणि जटित (नीलम, हीरा, पुखराज और माणिक जटित) बोरे (लटकन) लटक-लटक कर ऐसी शोभा देते हैं माना शनि, शुक्र, वृहस्पति और मंगल का समुदाय एकत्र हुआ है । दूध के दाँतों की छवि कही नहीं जाती, हाँ एक अद्भुत उपमा मन में आती है, किलकते और हँसते समय जो दाँत दिखाई देते हैं और छिप जाते हैं वे ऐसे जान पड़ते हैं माना बादल में बिजली चमकती और छिपती हो । वे जो थोड़ी थोड़ी स्पष्ट वार्ता करते हैं, उस वार्ता के टूटे फूटे बचन पूर्ण आनंद देते हैं । वे

घुटनों के बल चलते हैं, धूल से शरीर भूषित हो रहा है, ऐसे सुंदर रूप पर सूरदास बलिहार होता है।

अलंकार—पंक्ति ३, ४ और ५, ६ तथा ७, ८ और ६, १० में बड़ी ही सुंदर उत्प्रेक्षाएँ हैं। ११वीं पंक्ति में विभावना (दूसरी)।

(नोट) कृष्ण के बाल रूप की सुंदर झाँकी है। यह पद कृष्ण भक्तों को कंठाग्र कर लेना चाहिये।

१३—राग धनाश्री

कान्ह चलत पग द्वै द्वै धरनी।
जो मनमें अभिलाष करत ही सो देखत नँदघरनी॥
रुनुक झुनुक नूपुर बाजत पग यह अति है मन हरनी।
बैठ जात पुनि उठत तुरत ही सो छबि जाय न बरनी॥
व्रज जुवती सब देखि थकित भईं सुंदरता की सरनी।
चिरजीवो जसुदा को नंदन 'सूरदास' को तरनी॥

शब्दार्थ—करत ही=करती थी। रुनुक झुनुक=(अनुकरण शब्द हैं) झुनुन झुनुन। नूपुर=घुँघुरू। सरनी=चाल। तरनी=नाव।

(नोट) जैसा शब्द किसी वस्तु से निकले वैसा ही शब्द सूचक शब्द बना लिया जाय उसे अनुकरण शब्द कहते हैं,

जैसे ठाँय ठाँय बंदूकें दगने लगीं। धाँय धाँय तोपें गरजने लगीं। टप-टप बूंदें पड़ने लगीं। झुन-झुन पैजनी बजने लगीं इत्यादि। इन वाक्यों में ठाँय-ठाँय, धाँय-धाँय, टप-टप, झुन-झुन, इत्यादि अनुकरण शब्द हैं। ऐसे शब्दों को अँग्रेज़ी में Automatic poetic word कहते हैं।

१४—राग गौरी

भीतर ते बाहिर लौं आवत।
घर आँगन अति चलन सुगम भयो देह देहरी में अटकावत॥
गिर-गिर परत जात नहिं उलँघी, अति स्रम होत, न धावत।
अहुठ पैग बसुधा सब कीन्ही धाम-अवधि बिरमावत॥
मनही मन बल बीर कहत हैं ऐसे रंग बनावत।
'सूरदास' प्रभु अगनित महिमा भगतन के मन भावत॥

शब्दार्थ—उलँघी न जात=नाकी नहीं जाती। अहुठ=(सं० अर्धत्रय) साढ़े तीन। पैग=कदम, डग। बसुधा=पृथ्वी धाम अवधि=देहरी। बिरमावत=रुक जाते हैं। बल=बलदेव-जो। वीर=भाई। ऐसी रंग बनावत=ऐसे लीला (स्वांग) करते हैं।

भावार्थ—(अब श्री कृष्ण इस अवस्था के हो गये कि) भीतर से बाहर तक आ सकते हैं। घर में और आँगन में

चलना फिरना तो सुगम हो गया, पर देहरी के निकट आकर रुक जाते हैं। देहरी पर चढ़ने में गिर गिर पड़ते हैं, लाँघी नहीं जाती, बड़ा परिश्रम करते हैं, पर उसके आगे नहीं दौड़ सकते। ये वेही हैं जिन्हों ने बामनावतार में सारी पृथ्वी को साढ़े तीन कदम में नाप लिया था, अब बाल रूप होकर देहरी पर रुक जाते हैं। यह लीला देख कर बलदेवजी अपने मन में कहते हैं कि देखो अब ऐसी लीला करते हैं। सूरदास कहते हैं कि प्रभु की महिमा तो बहुत बड़ी है, परंतु काम वही करते हैं जो भक्तों को रुचै।

१५—राग भैरव

सो बल कहाँ गयो भगवान।
जेहि बल मीन रूप जल थाह्यो लियो निगम हति असुर पुरान॥
जेहि बल कमठ पीठ पर गिरि धरि सजल सिंधु मथि कियो बिमान।
जेहि बल रूप बराह दसन पर राखी पुहुमी पुहुप समान॥
जेहि बल हिरनकसिपु तनु फाख्यो भए भगत हित कृपानिधान।
जेहि बल बलि बंधन करि पठयो त्रैपद बसुधा करी प्रमान॥
जेहि बल बिप्र तिलक दै थापे रच्छा आपु करी बिदमान।
जेहि बल रावन के सिर काटे कियो बिभीषन नृपति समान॥

जेहि बल जाँबवंत मद मेस्यौ जेहि बल ध्रुव विनती सुनि कान।
'सूरदास' अब धाम देहरी चढ़ि न सकत हरि खरेई अयान॥

शब्दार्थ—जल थाह्यो=समुद्र की थाह लगाई। निगम=वेद। असुर पुरान=पुराना असुर।

गिरि=मंदराचल पर्वत। विमान=(वि+मान) मान मर्दित। कियो विमान=मान मर्दन कर डाला। पुहुमी=पृथ्वी। पुहुप=पुष्प, फूल। भगत=(भक्त) प्रहलाद। बिद्मान=विद्यमान रह कर, मौजूद रह कर। खरेई अयान=बड़े ही (अज्ञान) भोले भाले, निपट नादान बच्चे।

(नोट) इसमें कृष्णावतार के पूर्व वाले ८ अवतारों की ओर इशारा है! इनकी कथाएं पुराणों में प्रसिद्ध हैं। ९ वीं पंक्ति में "जामवंत मद मेस्यो" न लिखना चाहिये था, क्योंकि यह कथा तो द्वारिका जाने के बाद की है। पर न जाने सूर ने क्यों इसका समावेश यहाँ पर कर दिया है। यह काव्य का एक दोष है, जिसे "काल दोष" कहते हैं।

भावार्थ—सरल ही है।

१६—राग बिलावल

बरनों बाल-भेष मुरारि।
थकित जित तित अमर-मुनि-गन नंदलाल निहारि॥

केस सिर बिन पवन के चहुँ दिसा छिटके झारि।
सीस पर धरे जटा मानौ रूप किय त्रिपुरारि॥
तिलक ललित ललाट केसरि बिंदु सोभाकारि।
अरुन रेखा जनु त्रिलोचन रह्यो निज रिपु जारि॥
कंठ कठुला नीलमनि, अंभोज-माल सँवारि।
गरल ग्रीव, कपाल उर, यहि भाय भये मदनारि॥
कुटिल हरिनख हिये हरि के हरषि निरखति नारि।
ईस जनु रजनीस राख्यो भालहू ते उतारि॥
सदन-रज तन स्याम सोभित सुभग इहि अनुहारि।
मनहु अंग बिभूति राजत संभु सो मधु-हारि॥
त्रिदसपति-पति असन को अति जननि सों कर आरि।
'सूरदास' बिरंचि जाको जपत निज मुख-चारि॥

शब्दार्थ—मुरारि=विष्णु भगवान (यहां) कृष्णजी। त्रिपुरारि=शंकर। त्रिलोचन=महादेव। निजरिपु=कामदेव। अंभोज=कमल। गरल=विष। कपाल=मुंडमाला। मदनारि=शंकर। कुटिल=टेढ़ा। हरिनख=बघनहा। ईस=महादेव। रजनीस=चंद्रमा। मधुहारि=मधु दैत्य को मारनेवाले (कृष्ण) त्रिदसपति-पति=विष्णु (यहां) कृष्ण। असन को=भोजन के लिये। आरि=हठ।

भावार्थ—मैं श्रीकृष्ण के बाल भेष को बर्णन करता हूँ। नंदलाल के उस रूप को देखकर देवता और मुनि समूह जहाँ

तहाँ स्थकित हो रहे हैं। उनके सिर पर विना हवा के ही बाल चारो ओर छिटके हैं, मानो सिर पर जटा युक्त शंकर का रूप बनाया है। सुन्दर केसर की बिंदी का भाल पर तिलक लगा है, वीच में लाल श्री की रेखा है, सो ऐसी जान पड़ती है। मानो शंकर (तीसरे नेत्र की ज्वाला से) अपने शत्रु (कामदेव) को जला रहे हैं। गले में नीलमणि का कठुला पहने हैं और हृदय पर कमलों की लंबी माला है, यह ऐसा जान पड़ता है, मानो शंकर के गले में विष है और हृदय पर मुंडमाला पहनी है। टेढ़े बघनख कृष्ण के वक्षस्थल पर देखकर स्त्रियाँ खुश होती हैं, मानो शंकर ने भाल से उतार कर चंद्रमा को हृदय पर धारण किया है। घर की धूल कृष्ण के श्याम शरीर पर ऐसी शोभती है मानो शरीर में भस्म लगाकर श्रीकृष्णजी शंकर समान शोभा देते हैं। श्रीकृष्ण माता से कलेवा के लिये हठ कर रहे हैं। सूरदासजी कहते हैं कि ये वही ईश्वर हैं जिन्हें ब्रह्मा चार मुख से भजते हैं।

अलंकार—दूसरी पंक्ति के संबंधातिशयोक्ति, तीसरी पंक्ति से बारहवीं पंक्ति तक उत्प्रेक्षाएँ हैं। १३, १४ में पुनः अतिशयोक्ति है।

(नोट) कृष्ण के बालरूप और शंकर के रूप का अच्छा मिलान है। इससे सूर की प्रतिज्ञा प्रगट होती है।

———

१७—राग रामकली

मैया कबहिं बढ़ैगी चोटी।
किती बार मोहि दूध पिवत भई यह अजहूँ है छोटी॥
तू जो कहति बल की बेनी ज्यों ह्वै है लांबी मोटी।
काढ़त गुहत न्हवावत ओंछत नागिनि सी भुंइ लोटी॥
काचो दूध पिवावत पचि पचि देत न माखन रोटी॥
'सूर' स्याम चिरजिव दोउ भैया हरि हलधर की जोटी॥

शब्दार्थ—किती बार = कितनी देर। बल = बलदाऊ जी। बेनी = चोटी। काढ़त = बनाते। ओंछत = कंघी करते। भुइँ = भूमि। काचो = कच्चा। पचि पचि = ज़िद करके। जोटी = जोड़ी।

(नोट) इस पद में 'बाल-बुद्धि' का चित्रण बड़ा ही अच्छा है।

१८—राग देवगंधार

कहन लगे मोहन मैया मैया।
पिता नंद सों बाबा बाबा अरु हलधर सों भैया॥
ऊँचे चढ़ि चढ़ि कहत जसोदा लै लै नाम कन्हैया।
दूरि कहूँ जिनि जाहु लला रे मारैगी काहू की गैया

गोपी ग्वाल करत कौतूहल घर घर लेत बलैया।
मनि खंभन प्रतिबिंब विलोकत नचत कुँवर निज पैया॥
नंद जसोदाजी के उर तें इह छबि अनत न जइया।
'सूरदास' प्रभु तुमरे दरस को चरनन की बलि गइया॥

शब्दार्थ—हलधर = बलदेवजी। जिनि = मत। कौतूहल = आश्चर्य मय खेल। बलैयालेना = ऐसी इच्छा करना कि अमुक व्यक्ति पर आनेवाली आपत्ति मुझ पर चाहे आजाय पर यह सुरक्षित रहे। निज पैया = अपने पैरों पर। न जैया = नहीं जाती। बलि गइया = बलिहार गई।

भावार्थ—बहुत सरल है।

(नोट) ३, ४ पंक्ति में स्वपुत्र रक्षा हेत मातृ हृदय की चिंता का अच्छा प्रदर्शन है। ६वीं में बाल प्रकृति का चित्रण है। अन्य पदों में भी पाठिकाओं को विचारना चाहिये कि इस पद में सूरदास जी किस भाव का चित्रण कर रहे हैं।

———

१६—राग कान्हरो

ठाढ़ी अजिर जसोदा अपने हरिहि लिये चंदा दिखरावत।
रोवत कत बलि जाउं तुम्हारी देखौ धौं भरि नैन जुड़ावत॥
चितै रहे तब आपुन ससि तन अपने कर लैलै जु बतावत।

मीठो लगत किधौं यह खाटो देखत अति सुन्दर मन भावत ॥
मनही मन हरि बुद्धि करत हैं माता को कहि ताहि मँगावत।
लागी भूख चंद मैं खैहौं देहु देहु रिस करि विरुझावत ॥
जसुमति कहत कहा मैं कीनो रोवत मोहन अति दुख पावत।
'सूर' स्याम को जसुदा बोधति गगन चिरैयाँ उड़त लखावत ॥

शब्दार्थ—अजिर=आँगन। धौं=तो (ज़ोर देने के लिये इस शब्द का प्रयोग होता है)। नैन भरि देखो=अच्छी तरह से देखो। (नैन) जुड़ावत=नेत्रों को ठंडक देता है। ससितन=चन्द्रमा की ओर। बुद्धि करत हैं=सोचते हैं। विरुझावत=मचलते हैं, रुष्ट होते हैं। बोधति=समझाती है, धैर्य देती है। गगन......लखावत=बहलाती है।

भावार्थ—अपने आँगन में खड़ी जसोदाजी कृष्ण को लिये चन्द्रमा दिखलाती हैं। (कहती हैं कि) बलिहारी जाऊँ, क्यों रोते हो, इसे देखो तो, इसे आँख भर देखने से नेत्रों को ठंडक मिलती है। तब कृष्ण चन्द्रमा की ओर देखने लगे, और अपने हाथ में लेने का इशारा करते हैं। (मन में सोचते हैं कि) देखने में तो अति सुन्दर लगता है, पर खाने में यह मीठा होगा या खट्टा, (मानो ऐसा सोच कर) उसको माता द्वारा मँगवाना चाहते हैं। (कहते हैं कि) मुझे भूख लगी है, चन्द्रमा ला दे मैं उसे खाऊँगा। शीघ्र दे, शीघ्र दे, ऐसा कह कह कर मचलते हैं।

यशोदा पछताती हैं कि मैंने यह क्या किया, अब तो कृष्ण उसके लिये रो रहा है और दुखी होता है। (उन्हें बहलाने के लिये) सूर कहते हैं कि, यशोदा समझाती हैं और "देखो आकाश में यह चिड़िया उड़ रही है," ऐसा कह कह कर बहलाती हैं।

२०—राग कान्हरो

किहि विधि करि कान्है समुझैहौं।
मैं ही भूलि चन्द दिखरायो ताहि कहत 'मोहि दै मैं खैहौं' ॥
अनहोनी कहुँ होत कन्हैया देखी सुनी न बात।
यह तौ आहि खिलौना सबको खान कहत तेहि तात ॥
यहै देत लवनी नित मोको छिन-छिन साँझ सवारे।
बार-बार तुम माखन माँगत देउँ कहाँ ते प्यारे ॥
देखत रहौ खिलौना चन्दा आरि न करौ कन्हाई।
'सूर' स्याम लियो महरि जसोदा नन्दहि कहत बुझाई ॥

शब्दार्थ—अनहोनी = असंभव बात (चन्द्र भक्षण)। लवनी = माखन। सवारे = प्रातः काल। आरि = हठ। बुझाई = समझा कर। यहै देत........प्यारे = यही चन्द्रमा तो मुझे नित्य माखन देता है, जिसे तुम सन्ध्या सवेरे बार-बार माँगते

हो, (उसी चन्द्रमा को तुम खाने कहते हो, तो फिर माखन कहाँ से मिलैगा, और मैं तुम को कहाँ से लाकर दूँगी ।

भावार्थ—सरल है ।

२१—राग कान्हरो

बार बार जसुमति सुत बोधति आउ चंद तोहिं लाल बुलावै ।
मधु मेवा पकवान मिठाई आपु न खैहै तोहिं खवावै ।
हाथहिं पर तोहिं लीने खेलै नहिं धरनी बैठावै ।
जल-भाजन कर लै उठावति या में तनु धरि आवै ॥
जल-पुट आनि धरनि पर राख्यो गहि आन्यो चंदा दिखरावै ।
'सूरदास' प्रभु हँसि मुसकाने बार बार दोऊ कर नावै ॥

शब्दार्थ—बोधति = समझाती है, बहलाती है । मधुमेवा = मीठे मेवे (छोहारे, दाखादि) जल पुट = जल पात्र । जल से भरा कोई पात्र । गहि आन्यो = पकड़ लाई । नावै = (जल पात्र में) डालते हैं ।

भावार्थ—सरल ही है ।

(नोट)—'प्रभु हँसि मुसुकाने'—(१) आनंदित हुये कि चन्द्रमा आ गया (बाल भाव से) (२)—(प्रभु भाव से) इस

हेतु मुसुकाये कि देखो यशोदा हमें पुत्र समझ कर कैसा भोराती है।

२२—राग रामकली

मेरो माई ऐसो हठी बालगोविन्दा।
अपने कर गहि गगन बतावत खेलन को माँगै चन्दा॥
बासन कै जल धस्यो जसोदा हरि को आनि दिखावै।
रुदन करत ढूँढै नहिं पावत धरनि चन्द कैसे आवै॥
दूध दही पकवान मिठाई जो कछु माँगु मेरे छौना।
भौंरा चकई लाल पाट को लेडुवा मांगु खिलौना॥
दैत्यदलन गजदंत उपारन कंसकेस धरि फंदा।
'सूरदास' बलि जाइ जसोमति सुखसागर, दुख खंदा॥

शब्दार्थ—अपने कर गहि गगन बतावत=मेरा हाथ अपने हाथ से पकड़ कर आकाश की ओर उठाता है (कि चन्द्रमा को पकड़ दे) बासन कै=पात्र में भर कर। छौना=(सं० शावक, प्रा० छाव+'औना' प्रत्यय) बच्चा। भौंरा=लट्टू। चकई=एक खिलौना विशेष जो चक्र के आकार का होता है और डोरे से फेंक कर नचाया जाता है। लाल पाट=सुर्ख रेशम। लेड़वा=वह डोरा जिससे लट्टू वा चकरी नचाई जाती है (इसे काशी में 'लत्ती' कहते हैं)। कंसकेस धरि फंदा=कंसके

बाल पकड़ कर उसे फँसाने वाले। दुख खंदा = दुख को खोद डालने वाले (नष्ट करने वाले)।

(नोट) इस पद की अन्तिम दोनों पंक्तियाँ कुछ असंबद्ध सी मालूम होती हैं पर यह बात नहीं है। ये पंक्तियाँ समस्त "चन्द्र माँगन लीला" के सुफल को सूचित करती हैं। भाव यह है कि कृष्ण भगवान सुखसागर हैं। दुष्टों को मार कर सुख देते हैं (मुक्ति देते हैं) और अपने भक्तों को अपने निकट रख कर सुख देते हैं। चन्द्रमा भी एक कृष्ण भक्त है। अतः इस लीला से यह दिखलाया कि मैं तुम्हें प्यार करता हूँ और तुम्हें अपने पास रख कर तुम्हारा दुःख दूर करूँगा। इसी भाव के सूचनार्थ ये पंक्तियाँ हैं।

२३—राग रामकली

प्रात समय उठि सोवत हरि को बदन उघार्‌यो नन्द।
रहि न सकत, देखन को आतुर नैन निसा के द्वंद॥
स्वच्छ सेज मैं तें मुख निकसत गयो तिमिरि मिटि मंद।
मानौं मथि पय-सिंधु फेन फटि दरस दिखायो चंद॥
धायो चतुर चकोर 'सूर' सुनि सब सखि सखा सुछंद।
रही न सुधिहु सरीर धीर मति पिवत किरन मकरंद॥

शब्दार्थ—उघाख्यो=(सं० उद् घाटन) खोला। नैन निसा के द्वंद्व=नेत्रों और रात्रि के झगड़े से (रात्रि ने आकर नेत्रों में निद्रा भर दी जिससे कुछ देर सोना पड़ा और उतनी देर तक कृष्ण को न देख सके) मंद=धीमा। पय सिंधु=छीर सागर। किरन मकरंद=छविछटा रूपी अमृत।

(विशेष) नैन निसा के द्वंद—इन शब्दों के प्रयोग से जो भाव प्रकट किया गया है, इसी प्रकार को 'उक्ति वैचित्र्य' कहते हैं। सूरदास इसमें बड़े कुशल हैं।

अलंकार—३-४ पंक्ति में उत्प्रेक्षा।

———

२४—-राग बिलावल

जागिये ब्रजराज कुँवर कमल कुसुम फूले।
कुमुद बृन्द सकुचित भए भृंग लता भूले॥
तमचुर खग रौर सुनहु बोलत बनराई।
राँभति गौ खरकन में बछरा हित धाई॥
बिधु मलीन रविप्रकाश गावत नर-नारी।
'सूर' स्याम प्रात उठौ अंबुज कर धारी॥

शब्दार्थ—तमचुर=(सं० ताम्रचूड़) मुर्गा। रौर=(सं० रव) शोर। बनराई=बन के मधुर भाषी पक्षी। राँभति=

चिल्लाकर शब्द करती है (गाय के लिये प्रयोग होता है)। खरका = गायों का बाड़ा। बिधु = चंद्रमा। अंबुज = कमल।

भावार्थ—सरल है।

(नोट) प्रातःकाल का अच्छा वर्णन है।

२५—राग गौरी

मैया मोहिं दाऊ बहुत खिझायो।
मोसों कहत मोल को लीनो तोहि जसुमति कब जायो॥
कहा कहौं एहि रिस के मारे खेलन हौं नहिं जातु।
पुनि पुनि कहत कौन है माता को है तुमरो तातु॥
गोरे नंद जसोदा गोरी तुम कत स्याम सरीर।
चुटकी दै दै हँसत ग्वाल सब सिखै देत बलवीर॥
तू मोही को मारन सीखी दाउहि कबहुँ न खीझै।
मोहन को मुख रिस समेत लखि जसुमति सुनि सुनि रीझै॥
सुनहु कान्ह बलभद्र चवाई जनमत ही को धूत।
'सूर' स्याम मोहि गोधन की सौं हौं माता तू पूत॥

शब्दार्थ—खिझायो = दिक कर डाला। जायो = जना, पैदा किया। तातु = पिता। दाऊ = बड़ा भाई। खीझै = डाँटती

है। चवाई=शरीर, चुगुलखोर। धूत=ठग, छली। सौं=शपथ। हौं=मैं। गोधन=गायों।

भावार्थ—सरल है।

(नोट) बालकों के भोलेपन का बहुत सुन्दर वर्णन है। गोधन की सौं—बहुत ही स्वाभाविक शपथ है। ग्वालों को गोधन से अधिक प्यारी वस्तु और कौन हो सकती है, इसी प्रकार कायस्थ लोग कलम और किताब की कसम खाते हैं, ब्राह्मण जनेऊ की।

२६—राग विहागरो

खेलन दूरि जात कित कान्हा।
आजु सुन्यो वन हाऊ आयो तुम नहिं जानत नान्हा॥
इक लरिका अबहीं भजि आयो बोलि बुझावहुँ ताहि।
कान तोरि वह लेत सबन के लरिका जानत जाहि॥
चलिये वेगि सवेर सबै भजि अपने अपने धाम।
'सूरदास' यह बात सुनत ही बोलि लिये बलराम॥

शब्दार्थ—हाऊ=कोई भयंकर और दुष्ट प्रकृति व्यक्ति। नान्हा=नादान। बोलि=बुलवाकर। बुझावहुँ=पुँछवा दूँ। कान तोरि लेत=कान उखाड़ लेता है।

भावार्थ—सरल है।

(नोट) भोले बच्चों को डरवाने का वर्णन है।

२७—राग रामकली

जसुमति कान्है यहै सिखावति।
सुनहु स्याम अब बड़े भये तुम अस्तन पान छुड़ावति॥
ब्रज लरिका तोहिं पीवत देखैं हँसत लाज नहिं आवति।
जैहैं बिगरि दाँत हैं आछे ताते कहि समुझावति॥
अजहूँ छाँड़ि कह्यो करि मेरो ऐसी बात न भावति।
'सूर' स्याम यह सुनि मुसुकाने अञ्चल मुखहि लुकावति॥

शब्दार्थ—अस्तन पान=दूध पीना। आछे=अच्छे। लुकावति=छिपाती है।

भावार्थ—सरल है।

(नोट) माताएँ अब भी ऐसा ही कह कर बच्चे का दूध पीना (स्तन पान) छोड़ाती हैं।

२८—राग नट

हरि को बाल रूप अनूप।
निरखि रहिं ब्रजनारि इकटक अङ्ग अँग प्रति रूप॥
बिथुरि अलकैं रहिं बदन पर, बिनहिं पवन सुभाइ।
देखि खंजन चंद के बस करत मधुप सहाइ॥
सुलछ लोचन, चारु नासा परम रुचिर बनाइ।
जुगल खंजन लरत लखि सुक बीच कियो बनाइ॥
अरुन अधरनि दसन भाये कहौं उपमा थोरि।
लालपुट बिच मोति मानौं धरे बंदन बोरि॥
सुभग बाल-मकुंद की छबि बरनि कापै जाइ।
भृकुटि पर मसि-बिन्दु सोहै सकै 'सूर' न गाइ॥

शब्दार्थ—इकटक = टकटकी लगाकर। बिथुरि रही = फैल रही हैं। अलकें = बालों की लटैं। बदन = मुख। सुलछ = सुलक्षण, सुन्दर। जुगल = दो। बीच कियो = बीच बचाव किया है। बनाइ = अच्छी तरह से। भाये = शोभा देते हैं। बंदन = सिंदूर। मसि बिन्दु = काजल का बुंदा, दिठौना।

भावार्थ—कृष्ण का बाल रूप अनुपम है। ब्रज की स्त्रियाँ उनके अङ्ग अङ्ग का रूप टकटकी लगा कर देखती हैं। (कैसा रूप है) बिना पवन के ही स्वभावतः उनकी लटैं मुख पर छिटक रही हैं, (मानो) दो खंजनों को (नेत्रों को) चंद्रमा के (मुख

के) वश में पड़ा देख कर भौंरे (बालों की लटें) उनकी सहायता करते हैं। दो सुन्दर नेत्रों के बीच में एक परम सुन्दर नाक है, मानो दो खंजन लड़ने को ही थे कि सुग्गा ने बीच में आकर बीच-बचाव कर दिया। लाल ओठों में दाँत शोभते हैं, उनकी थोड़ी सी उपमा कहता हूँ, वे ऐसे जान पड़ते हैं मानों माणिक के संपुट में सिंदूर भरे मोती रखे हों। बालमुकुंद की ऐसी सुन्दर छवि किस से वर्णन की जा सकती है, तिस पर भौंह के ऊपर दिठौना लगा है (उसकी शोभा तो) सूरदास गान नहीं कर सकता।

अलंकार—३, ४ पंक्ति में गम्योत्प्रेक्षा। ५, ६ पंक्ति में भी वही गम्योत्प्रेक्षा। ७,८ में उत्प्रेक्षा। प्रथम पंक्ति में धर्म वाचकोपमान लुप्तोपमा। अंतिम पंक्ति में वाचकोपमान लुप्तोपमा।

———

२९——राग सारंग

जेंवत स्याम नन्द की कनियाँ।
कछुक खात कछु धरनि गिरावत छबि निरखत नँदरनियाँ॥
बरी बरा बेसन बहु भाँतिन ब्यञ्जन बहु अनगनियाँ।
डारत खात लेत अपने कर रुचि मानत दधि-दनियाँ॥
मिसिरी दधि माखन मिस्रित करि मुख नावत छबिधनियाँ।
आपुन खात नन्द-मुख नावत सो सुख कहत न बनियाँ॥

जो रस नन्द जसोदा विलसत सो नहिं तिहूँ भुवनियाँ।
भोजन करि नँद अचवन कीन्हों मांगत 'सूर' जुठनियाँ॥

शब्दार्थ—जेंवत=भोजन करते हैं। नँदरनियाँ=(नन्द-रानी) यशोदा। व्यंजन=भोजन की वस्तुएँ। अनगनियाँ=अगणित। रुचि मानत दधि दनियाँ=जो कृष्ण को रुचता है। डारत=भूमि में गिरा देते हैं। छबि धनियाँ=छबि के धनी (श्रीकृष्ण)। आपुन=आप खुद। नावत=डालते हैं। रस=आनन्द।

भावार्थ—सरल ही है।

(नोट) इस पद के कुछ तुकान्त यद्यपि गढ़ंत के हैं, तथापि प्रसाद युक्त और मधुर हैं। ऐसी गढ़ंत में सूर बड़े कुशल हैं।

३०—राग नट

खेलत स्याम अपने रंग।
नन्दलाल निहारि शोभा निरखि थकित अनंग॥
चरन की छबि निरखि डरप्यो अरुन गगन छपाइ।
जनु रमा की सबै छबि तेहि निदरि लई छँड़ाइ॥

जुगल जंघनि खंभ रंभा नहिन समसरि ताहि।
कटि निरखि केहरि लजाने रहे घन वन चाहि॥
हृदय हरिनख अति विराजत छबि न बरनी जाइ।
मनौ बालक वारिधर नवचन्द्र लियो छपाइ॥
मुकुतमाल विसाल उर पर कछु कहौं उपमाइ।
मनौ तारागन नवोदित नभ रहे दरसाइ॥
अधर अरुन अनूप नासा निरखि जन सुखदाइ।
मनौ सुक फल बिंब कारन लेन बैठो आइ॥
कुटिल अलक बिना पवन के मनौ अलि ससि जाल।
'सूर' प्रभु की ललित सोभा निरखि रहिं ब्रज बाल॥

शब्दार्थ—अपने रंग=इच्छा के अनुसार। अनंग=कामदेव। अरुन=सूर्य देव का सारथी। चरन की छबि......छपाइ=चरण (चरणतल) के तलवों की छवि देखकर अरुण डर गए, अतः आकाश में जा छिपे। रमा=लक्ष्मीजी। निदरि=अनादर कर के। रंभा=कदली तरु। समसरि=बराबरी। रहे घन वन चाहि=ढूँढ़ कर घने बन में जा कर रहे। बालक वारिधर=छोटा मेघखंड। नवचन्द्र=द्वितिया का चन्द्रमा। नवोदित=हाल के निकले हुए। अरुन=लाल। फलबिंब=बिंबाफल, कुँदुरू। अलक=लटें। अलि=भौंरा।

भावार्थ—श्रीकृष्ण अपने इच्छानुसार खेल रहे हैं। (उस समय की) श्रीकृष्ण की शोभा को देख कर कामदेव

भी स्थगित हो गया (काम से अधिक सुन्दर हैं)। चरणतल की छबि देख कर डरा हुआ अरुण आकाश में जा छिपा और मानो लक्ष्मी की सारी शोभा, उसे फटकार बता कर उसने छीन ली है। दोनों जंघा ऐसी हैं कि केलावृक्ष बराबरी नहीं कर सकते। कमर को देख कर सिंह लजाया तो घना जङ्गल ढूँढ़ कर वहाँ रहने लगा। हृदय पर बघनहाँ बहुत शोभा देता है कि उसकी छबि कही नहीं जाती, मानो छोटे से बादल खंड ने नवीन चन्द्र को पकड़ रखा है। चौड़े सीने पर मोतियों की माला है, उसकी कुछ उपमा मैं कहता हूँ, मानो नवीन निकले हुए तारागण आकाश में दिखाई देते हैं। लालओठ और अनुपम नाक देखने में लोगों को सुखद हैं मानों कोई सुग्गा बिंबाफल लेने के लिये आ बैठा है। बिना बयार के ही टेढ़ी लटें (मुख पर लहराती हुई ऐसी जान पड़ती हैं) मानो भौंरे चन्द्रमा के जाल में फँस गए हैं (देखो, ऐसा ही भाव पद नं० २८ में भी है)। सूरदास कहते हैं कि कृष्ण की ऐसी सुन्दर शोभा व्रजवालाएँ देख रही हैं।

अलंकार—२, ३ पंक्ति में प्रतीप, ४ में उत्प्रेक्षा, ५, ६ में प्रतीप, ७, ८ में उक्त विषया वस्तूप्रत्प्रेक्षा, ९, १० में भी वही उत्प्रेक्षा, ११, १२ में सिद्ध विषया फलोत्प्रेक्षा १३ में उत्प्रेक्षा।

२१—राग कान्हरो

बोलि लेहु हलधर भैया को।
मेरे आगे खेल करौ कछु नैननि सुख दीजै मैया को॥
मैं मूंदों हरि आँखि तुम्हारी बालक रहैं लुकाई।
हरषि स्याम सब सखा बुलाए खेलो आँखि-मुँदाई॥
हलधर कहै आँखि को मूंदै हरि कह्यो जननि जसोदा।
'सूर' स्याम लिये जननि खेलावति हरि हलधर मन मोदा॥

शब्दार्थ—बोलि लेहु=बोला लो। आँखि मुँदाई=आंख मिचौनी का खेल। मोद=आनन्द।

(नोट) आँख मिचौनी—बहुत से लड़के एकत्र होते हैं। एक लड़का अपनी आँखें अपने हाथ से मूँदता है वा कोई अन्य जन जो उस खेल में शरीक न हो एक लड़के की आँखें मूँद लेता है। शेष सब लड़के भग कर अपनी-अपनी सुविधानुसार जहाँ-तहाँ छिप जाते हैं। छिप रहने पर उसकी आँख खोल दी जाती है और वह उन लड़कों को ढूँढ़ने लगता है। जिसे खोज कर वह छू लेता है वह चोर समझा जाता है और फिर उसे अपनी आँखें मुँदानी पड़ती है। और पूर्ववत लड़कों को ढूँढ़ता है। इसी प्रकार जब तक इच्छा हुई खेल जारी रहता है।

भावार्थ—सरल है।

———

३२—राग रामकली

मो देखत जसुमति तेरे ढोटा अबहीं माटी खाई ।
इह सुनि कै रिस करि उठि धाई बाँह पकरि लै आई ॥
इक कर सों भुज गहि गाढ़े करि इक कर लीने साँटी ।
मारति हौं तोहि अबहिं कन्हैया बेगि न उगलो माटी ॥
व्रज लरिका सब तेरे आगे झूठी कहत बनाई ।
मेरे कहे नहीं तू मानति दिखरावौं मुख बाई ॥
अखिल ब्रह्मांडखण्ड की महिमा देखराई मुख माहीं ।
सिंधु सुमेरु नदी बन परबत चकित भई मन माहीं ॥
करते साँटि गिरत नहिं जानी भुजा छांड़ि अकुलानी ।
'सूर' कहै जसुमति मुख मूंदेउ बलि गइ सारँग-पानी ॥

शब्दार्थ—ढोटा = (सं० दहितृ) बेटा, लड़का । साँटी = छड़ी । मुख बाना = मुँह फैलाना । अखिल = सब । सारंग-पानि = विष्णु भगवान ।

भावार्थ—सरल है ।

३३—राग धनाश्री

मोहन काहे न उगिलो माटी ।
बार-बार अनरुचि उपजावत महरि हाथ लिए साँटी ॥

महतारी को कह्यो न मानत कपट चतुरई ठाटी।
बदन पसारि दिखाइ आपने नाटक की परिपाटी॥
बड़ी बार भई लोचन उघरे भ्रम-जामिनि नहीं फाटी।
'सूरदास' नँदरानि भ्रमित भई कहत न मीठी खाटी॥

शब्दार्थ—अनरुचि = नाराजी। ठाटी = की। आपने नाटक की परिपाटी = सृष्टि की रचना। भ्रम जामिनि नहि फाटी = भ्रम दूर न हुआ। मीठी खाटी = भला या बुरा।

भावार्थ—सरल है।

अलंकार—'भ्रम जामिनि' में रूपक। 'मीठी खाटी' में लोकोक्ति।

२४—राग गौरी

सखा सहित गए माखन चोरी।
देख्यो स्याम गवाच्छ पंथ ह्वै गोपी एक मथति दधि भोरी॥
हेरि मथानी धरी माट पै माखन हो उतरात।
आपुन गई कमोरी माँगन हरि हू पाई घात॥
पैठे सखन सहित घर सूने माखन दधि सब खाइ।
छूँछी छाँड़ि मटुकिया दधि की हँसे सब बाहिर आई॥

आइ गई कर लिये मटुकिया घर ते निकरे ग्वाल।
माखन कर दधि मुख लपटाने देखि रही नँदलाल॥
भुज गहि लियो कान्ह को, बालक भागे व्रज की खोरि।
'सूरदास' प्रभु ठगि रही ग्वालिनि मनु हरि लियो अँजोरि॥

शब्दार्थ—गवाच्छ=(सं० गवाक्ष) झरोखा, खिड़की। भोरी=भोलीभाली जो बहुत चतुरा न थी। हो=था। कमोरी=मटकी, छोटा गोरस पात्र। घात=मौका। छूँछी=खाली। ठगि रही=भौचक्की सी रह गई, कुछ करते धरते न बन पड़ा। अँजोरि लियो=अपनी अंजुली में कर लिया, अपनी मुट्ठी में कर लिया, लूट लिया, हर लिया, छल लिया।

(मिलाओ)—

करौं जो कछु धरौं सचि पचि सुकृत शिला बटोरि।
पैठि उर बरबस दया निधि दंभ लेत अँजोरि॥

(तुलसी० विनय पत्रिका)

मनु हरि लियो अँजोरि=मन तो श्रीकृष्ण ने हर लिया था।

भावार्थ—सरल ही है।

(नोट) मनु हरि लियो अँजोरि—में रुढ़ि लक्षणा समझो।

३५—राग सारंग

जसोदा कहाँ लौं कीजै कानि ।
दिनप्रति कैसे सही परति है दूध दही की हानि ॥
अपने या बालक की करनी जो तुम देखो आनि ।
गोरस खाइ ढूँढ़ि सब बासन भली करी यह बानि ॥
मैं अपने मंदिर के कोने माखन राख्यो जानि ।
सोई जाइ तुम्हारे लरिका लीनो है पहिचानि ॥
बूझी ग्वालिनि घर में आयो नेकु न संका मानी ।
'सूर' स्याम तब उतर बनायो चींटी काढ़त पानी ॥

शब्दार्थ—कानि=लिहाज़, अदब । सही परति है=सहन हो सकती है । बानि=आदत । उतर बनायो=बात बना कर जवाब दिया । चींटी काढ़त पानी=अपने हाथ से इसमें पड़ी हुई चींटियाँ निकाल रहा हूं ।

भावार्थ—सरल है ।

३६—राग धनाश्री

गोपाल दुरे हैं माखन खात ।
देखि सखी सोभा जु बनी है स्याम मनोहर गात ॥

उठि अवलोकि ओट ठाढ़े ह्वै जिहि बिधि हौं लखि लेत।
चकृत बदन चहूँ दिसि चितवत और सखन को देत ॥
सुन्दर कर आनन समीप अति राजत इहि आकार।
मनु सरोज बिधु-बैर बंचि करि लिए मिलत उपहार॥
गिरि-गिरि परत बदन ते उर पर ह्वै-ह्वै दधिसुत बिंदु।
मानहु सुभग सुधाकन बरषत लखि गगनांगन इंदु ॥
बालबिनोद बिलोकि 'सूर' प्रभु सिथिल भई ब्रजनारि।
फुरै न बचन, बरजिबे कारन रही बिचारि-बिचारि ॥

शब्दार्थ—दुरे हैं=लुके हैं, छिपे हैं। बिधु-बैर बंचिकै= चंद्रमा से शत्रुता त्याग कर। उपहार=भेंट। दधिसुत=माखन। गगनांगन=आकाश में। इंदु=चंद्र। फुरै न बचन=जवान से बचन नहीं निकलते। बरजिबे=मना करना।

भावार्थ—श्री कृष्ण (किसी ग्वालिन के घर) छिपे हुए माखन खा रहे हैं। (एक सखी अन्य सखी प्रति कहती है) हे सखी! देख तो कृष्ण के मनोहर शरीर की कैसी शोभा है। उठ और ओट में खड़ी होकर इस शोभा को देख जैसे मैं देख रही हूँ। चकित हो कर चारों ओर देख रहे हैं (कि कोई देखता तो नहीं) आप खाते हैं और सखाओं को भी देते हैं। (उनका) सुन्दर हाथ मुख के निकट ऐसा जान पड़ता है, मानो कमल चंद्रमा से बैर छोड़ कर भेंट लिए हुए मिल रहा है। माखन की कुछ बूँदे मुख से छूटकर वक्षस्थल पर गिर-गिर पड़ती

हैं वे देखने में ऐसी जान पड़ती हैं, मानो चंद्रमा आकाश पर सुधाकण बरसा रहा है। कृष्ण का यह बाल-विनोद देखकर सूरदास कहते हैं, कि व्रजनारियाँ मुग्ध हो रही हैं, ज़बान से बचन नहीं निकलते, यद्यपि कुछ कहने को बिचारती हैं।

अलंकार—५,...७ पंक्तियों में उक्तविषया वस्तुत्प्रेक्षाएं हैं। स्तंभ भाव है, कृष्ण की अति सुन्दरता व्यंग्य है।

३७—राग धनाश्री

चोरी करत कान्ह धरि पाये।
निसि बासर मोहि बहुत सतायो अब हरि हाथहिं आये॥
माखन दधि मेरो सब खायो बहुत अचगरी कीन्ही।
अब तौ फंद परे हौ लालन तुम्हैं भले मैं चीन्हीं॥
दोउ भुज पकरि कह्यो कित जैहौ माखन लेउँ मँगाई।
तेरी सौं मैं नेकु न चाख्यो सखा गये सब खाई॥
मुख तन चितै बिहँसि हँसि दीनो रिस तब गई बुझाई।
लियो उर लाइ ग्वालिनी हरि को 'सूरदास' बलि जाई॥

शब्दार्थ—हाथहिं आये=कबज़े में आये हैं। अचगरी=(सं०अति+करण) अत्याचार, ज्यादती (शरारत) फंद=पकड़, गिरफ़्त। माखन लेउँ मँगाई=अपना माखन तुमसे वसूल कर

लूँगी। सौं=सौगंध, कसम। बुझाई गई=जाती रही। उर लाइ लियो=हृदय से लगा लिया।

भावार्थ—सरल ही है।

(नोट) इस पदमें "मुखतन चितै" शब्द प्रत्यक्ष कह रहे हैं कि उस ग्वालिन का कृष्ण प्रति वात्सलय भाव है, न कि शृंगार भाव।

३८—राग सारंग

लोगन कहत झुकति तू बौरी।
दधि माखन गाँठी दै राखत करत फिरत सुत चोरी॥
जाके घर की हानि होत नित सो नहिं आन कहै री?
जाति पाँति के लोगन त्यागत और बसैहै नेरी॥
घर घर कान्ह खान को डोलत अतिहि कृपिन तू है री।
'सूर' स्याम को जब जोइ भावै सोइ तबहीं तू दै री॥

शब्दार्थ—झुकति=क्रुद्ध होती है, खीझती है। बौरी=(सं० वातुल) बावली, पगली। गाँठी दै राखति=छिपा रखती है। नहिं आन कहै री=आकर कहै ना? ओरहना न दे। और बसैहै नेरी=क्या अपने निकट औरों को बसावैगी? कृपिन=कंजूस।

(नोट) ओरहने मिलने पर यशोदा कृष्ण पर क्रुद्ध होकर उन्हें डाँटती हैं, तब कोई सखी यशोदा प्रति ये बचन कहती है।

भावार्थ—सरल है।

३९—राग मलार

महरि तैं बड़ी कृपिन है माई।
दूध दही बिधि को है दीनो सुत डर धरति छिपाई॥
बालक बहुत नाहिं री तेरे एकै कुँवर कन्हाई।
सोऊ तो घर ही घर डोलत माखन खात चुराई॥
वृद्ध बैस पूरे पुन्यनि तैं तैं बहुतै निधि पाई।
ताहू को खैबे पियबे को कहा करति चतुराई॥
सुनहु न बचन चतुर नागरि के जसुमति नंद सुनाई।
'सूर' स्याम को ओरहन के मिस है देखन को आई॥

शब्दार्थ—घरही घर डोलत=घर घर चोरी करता फिरता है। वृद्ध बैस=बुढ़ापे में। निधि=धन (पुत्र रत्न)

भावार्थ—सरल है।

अलंकार—पिहित।

४०——राग सारंग

कन्हैया तू नहिं मोहिं डेरात।
षटरस धरे छोड़ि कत पर घर चोरी करि करि खात॥
बकति बकति तोसों पचि हारी नेकहु लाज न आई।
व्रज परगन सरदार महर, तू ताकी करत नन्हाई॥
पूत सपूत भयो कुल मेरे अब मैं जानी बात।
'सूर' स्याम अबलौं तोहिं बकस्यो तेरी जानी घात॥

शब्दार्थ—पचिहारी=थक गई। व्रज परगन सरदार महर=व्रज के परगने का बड़ाभारी सरदार (नंद बाबा)। नन्हाई करत=छोटाई करवाते हो, निन्दा करवाते हो। सपूत=(अत्यंत तिरस्कृतव्यंग से) कुपुत्र,बुरा बेटा। बकस्यो=माफी दी, दोष क्षमा किये। तेरी जानी घात=अब तेरी शरारत मुझे प्रमाणित हो गई।

भावार्थ—सरल ही है।

४१——राग रामकली

मैया! मैं नाहीं दधि खायो।
ख्याल परे ये सखा सबै मिलि मेरे मुख लपटायो॥

देखि तुही सींके पर भाजन ऊँचे घर लटकायो।
तुही निरखि नान्हे कर अपने मैं कैसे करि पायो॥
मुख दधि पोंछि कहत नँदनंदन दोना पीठि दुरायो।
डारि साँट मुसुकाइ तबहिं गहि सुत को कंठ लगायो॥
बाल बिनोद मोद मन मोह्यो भगति प्रताप देखायो।
'सूरदास' प्रभु जसुमति के सुख सिव बिरंचि बौरायो॥

शब्दार्थ—ख्याल परे = खेल (मज़ाक) करने की इच्छा से। सींका = सिकहर। भाजन = दधिपात्र। साँट = छड़ी।

भावार्थ—सरल है।

अलंकार—अंतिम पंक्तिमें अतिशयोक्ति।

४२—राग रामकली

देखो माई या बालक की बात।
बन उपबन सरिता सब मोहे देखत स्यामल गात॥
मारग चलत अनीति करत हरि हठिकै माखन खात।
पीतांबर लै सिरते ओढ़त अंचल दै मुसुकात॥
तेरी सौं कहा कहौं जसोदा उरहन देत लजात।
जब हरि आवत तेरे आगे सकुचि तनक ह्वै जात॥

कौन कौन गुन कहौं स्याम के नेक न काहु डरात।
'सूर' स्याम मुख निरखि जसोदा, कहति कहा यह बात॥

शब्दार्थ—उपवन=बाग। तनक=छोटे से। गुन=(यहाँ) अवगुण, शरारत।

भावार्थ—सरल ही है।

(नोट) ७वीं पंक्ति के 'गुन' शब्द में अत्यंत तिरस्कृत वाच्य ध्वनि समझना चाहिये।

४३—राग सारंग

बाँधौं आजु कौन तोहिं छोरै।
बहुत लँगरई कीनी मोसों भुज गहि रजु ऊखल सों जोरै॥
जननी अति रिस जानि बँधायो चितै बदन लोचन जल ढोरै।
यह सुनि ब्रजजुवती उठि धाईं कहत कान्ह अब क्यों नहिं चोरै॥
ऊखल सों गहि बाँधि जसोदा मारन को साँटी कर तोरै।
साँटी लखि ग्वालिन पछितानी बिकल भई जहँ तहँ मुख मोरै॥
सुनहु महरि ऐसी न बूझिये सुत बाँधत माखन दधि थोरे।
'सूर' स्याम हमें बहुत सतायो, चूक परी हमतें यहि भोरे॥

शब्दार्थ—लंगरई=ढिठाई, बेअदबी। रजु=रस्सी।

ऊखल = ओखरी। जल ढोरैं = आँसू बहाते हैं (ढोरै = ढारै)। चोरैं = छिप रहते हो। साँटी = छड़ी। ऐसी न बूझिये = ऐसा न करना चाहिये। माखन दधि थोरे = थोड़े से माखन और दही के लिये। चूक परा = गलती हुई। यहि भोरे = इस धोखे से।

भावार्थ—कुछ कठिन नहीं है।

४४—राग विहागरो

कुँवर जल लोचन भरि भरि लेत।
बालक बदन विलोकि जसोदा, कत रिस करत अचेत॥
छोरि कमर तें दुसह दाँवरी डारि कठिन कर बेत।
कहि तो को कैसे आवतु है सिसु पर तामस एत॥
मुख आँसू माखन के कनिका निरखि नैन सुख देत।
मनु ससि स्रवत सुधानिधि मोती उडुगन अवलि समेत॥
सरबसु तौ न्यवछावरि कीजै 'सूर' स्याम के हेत।
ना जानौं केहि हेतु प्रगट भये इहि व्रज नंदनिकेत॥

शब्दार्थ—अचेत = (अचिंत्य) बहुत अधिक। दाँवरी = रस्सी। बेत = साँटी। तामस = क्रोध। एत = इतना। उडुगन = तारे। अवलि = पंक्ति, समूह।

भावार्थ—कुँवर कृष्ण आँखों में आँसू भर भर लेते हैं। हे

यशोदा ! बच्चे का मुहँ देख, क्यों इतना अधिक क्रोध करती है ? यह दुखदाई रस्सी कमर से खोल दे, हाथ से साँट फेंक दे। बतला तो तुझे ऐसे दुधमुहें बच्चे पर इतना क्रोध कैसे होता है ? मुख पर आँसू भी हैं और माखन बुंद भी हैं, देख कर आँखों को सुख मिलता है, मानो चन्द्रमा तारागण सहित अमृत और मोती टपका रहा है। सूरदास कहते हैं कि ये वही स्याम हैं, जिन पर सर्वस्व न्यौछावर कर डालना चाहिये (ईश्वर ही हैं, पर) न जानें क्यों व्रज में नंद के घर आकर प्रकट हुए हैं।

अलंकार—पंक्ति ५, ६ में उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा।

४५—राग सोरठ

जसोदा तेरो भलो हियो है माई।
कमल नयन माखन के कारन बाँधे ऊखल लाई॥
जो संपदा देव मुनि दुरलभ सपनेहुँ दइ न दिखाई।
याही ते तू गरब भुलानी घर बैठे निधि पाई॥
सुत काहू को रोवत देखति दौरि लेत हिय लाई।
अब अपने घर के लरिका सों इती कहा जड़ताई॥
बारंबार सजल लोचन ह्वै चितवत कुँवर कन्हाई।
कहा करौं बलि जाउँ छोरती तेरी सौंह दिवाई॥

जो मूरति जल थल मों व्यापक निगम न खोजत पाई।
सो मूरति तू अपने आँगन चुटकी ददै नचाई॥
सुरपालक सब असुर-सँहारक त्रिभुवन जाहि डराई।
'सूरदास' प्रभु की यह लीला निगम नेति नित गाई॥

शब्दार्थ—भलो=(यहाँ) बुरा। हियो=हृदय। संपदा=संपत्ति। हिय लाइ लेत=हृदय से लगा लेती थी। इती=इतनी। जड़ताई=कठोरता। कहा करौं·····दिवाई=क्या करूँ मैं तो बंधन से छोर देती, पर यशोदा ने तेरी ही सौगंद धरा दी है (ये बचन किसी स्त्री के श्रीकृष्ण प्रति हैं)। निगम=वेद। ददै=दे दे कर।

भावार्थ—कठिन नहीं।

(नोट) इस पद में ईश्वर का महत्व वर्णन है।

४९—राग गौरी

निरखि स्याम हलधर मुसुकाने।
को बाँधै को छोरै इनको इन महिमा येई पै जाने॥
उतपति प्रलय करत हैं येई सेस सहस मुख सुजस बखाने।
जमलार्जुनहि उधारन कारन, कारन करत अपन मनमाने॥

असुरसहारन भगतहितारन पावनपतित कहावत बाने।
'सूरदास' प्रभु भाव भगति के अतिहित जसुमति हाथ बिकाने॥

शब्दार्थ—हलधर = बलदेवजी। कारन करत = कोई मौका निकाल रहे हैं। अपन मनमाने = अपने मन का। बाने = विरुद। भाव भगति के = भक्ति की भावना से। जसुमति हाथ विकाने = यशोदा के हाथों विक गए हैं (अधीन हो गए हैं)

(नोट) जमलार्जुन = नल और कूबर नाम के दो कुबेर-पुत्र शापवश व्रज में आकर अर्जुन वृक्ष के रूप में पैदा हुए थे (जमल = दो, अर्जुन = अर्जुन नामक वृक्ष) उनको गिरा कर कृष्ण ने उनका उद्धार किया।

इससे पूर्ववाले पद में कहा है कि न जानें कृष्ण व्रज में क्यों प्रकटे। इसी का उत्तर इस पद में है कि यशोदा की भक्ति भावना से प्रकटे।

४७—राग गूजरी

जसोदा कान्हर तें दधि प्यारो।
डारि देहु कर मथत मथानी तरसत नंद दुलारो॥
दूध दही माखन वारौं सब जाहि करति तू गारो।
कुँभिलानो मुख चंद, देखि छवि काहे न नैन निहारो॥

ब्रह्म सनक सिव ध्यान न पावत सो ब्रज गैयन चारो।
'सूर' स्याम पर बलि बलि जैये जीवन प्रान हमारो॥

शब्दार्थ—कान्हर=कृष्ण। तरसत=दुःख पा रहा है। गारो=घमंड। कुँभिलानो=(सं० कु+म्लान) बुरी तरह से मलीन हो गया है। सनक=सनकादि ऋषि। गैयन चारो=गायों को चराया। बलि जाना=निछावर होना। जीवन प्रान हमारो=जो हमारे जीवन और प्रानों का कारण है।

भावार्थ—सरल है।

अलंकार—मुख चंद में रूपक। 'जीवन प्रान हमारो' में दूसरा हेतु 'जीवन प्रान हमारो' में गोणी साध्यवसाना लक्षणा है।

४८—राग धनाश्री

जसुमति केहि यह सीख दई।
सुतहि बाँधि तू मथत मथानी ऐसी निठुर भई॥
हरे बोलि जुवतिनि को लीनो सुनि सब तरुनी नई।
लरिकहिं त्रास दिखावत रहिये कत मुरझाय गई॥
मेरे प्रान जीवन धन माधव बाँधे बेर भई।
'सूर' स्याम कहँ त्रास दिखावत तुम कहा करत दई॥

शब्दार्थ—केहि यह सीख दई=तुझे किसने यह बात सिखाई है (कि कृष्ण को इस प्रकार दंड दे)। निठुर=निर्दय। हरे=धीरे से। सुनि...नई=सुन ! ये सब नवयौवना तरुणी हैं (ये पुत्र प्रेम क्या जानें, ये तो पति प्रेम जानती हैं, पुत्र प्रेम तो वृद्धा जानती हैं)। लरिकहिं......रहिये=बच्चों को केवल धमकाकर भय दिखला देना चाहिये (दंड न देना चाहिये) कत मुरझाय गई=अब तू क्यों म्लानमुखी हो गई है—दूसरी तरुण स्त्रियों के कहने से तू ने दंड तो दिया, पर पुत्र के कष्ट से तू दुखित तो अवश्य है (क्योंकि तू वृद्ध है और पुत्र प्रेम को जानती है)। बेर=देर। दई=दैया (आश्चर्य सूचक अव्यय)

(नोट) किसी पुत्रवत्सल वृद्धा का वचन यशोदा प्रति। अलंकार—'मेरे प्रान जीवन धन माधो' में दूसरा हेतु अलंकार और गौणी साध्यवसाना लक्षणा।

४९——राग सारंग

वन बन फिरत चारत धेनु।
स्याम हलधर सँग हैं बहु गोप-बालक-सेनु॥
तृषित भईं सब जानि मोहन सखन टेरत बेनु।
बोलि ल्याओ सुरभि गन सब चलौ जमुन जल देनु॥

सुनत ही सब हाँकि ल्याये गाइ करि इकठैन।
हेरि दै दै ग्वाल बालक किये जमुन-तट गैन ॥
रचि बकासुर रूप माया रह्यो छल करि आइ।
चंचु यक पुहुमी लगाई इक अकास समाइ ॥
मनहिं मन तब कृष्ण जान्यो बका-सुर विहंग ।
चोंच फारि बिदारि डारौं पलक में करौं भंग ॥

शब्दार्थ—चारतफिरत=चराते फिरते हैं। सेनु=सेना, समूह। तृषित=प्यासी। टेरत बेनु=वंशी बजाकर बुलाते हैं। जल देना=पानी पिलाना। इकठैन=एकत्र। हेरि दै दै=ग्वालों के राग से कुछ गाते हुए (हेरि=ग्वालों का गान)। गैन किय=गमन किया (गए)। चंचु=चोंच (का एक पल्ला) पुहुमी=पृथ्वी। बिहंग=पक्षी। बिदारि डारौं=विदीर्ण कर दूं, चीर डालूं। पलक में =अति शीघ्र। भंग करूँ=मार डालूं।

भावार्थ—सरल है।

५०—राग सारंग

आई छाक बुलाए स्याम।
यह सुनि सखा सबै जुरि आए सुबल सुदामा अरु श्रीदाम॥

कमलपत्र दीना पलास के सब आगे धरि परुसत जात।
ग्वाल मंडली मध्य स्यामघन सब मिलि भोजन रुचिकर खात ॥
ऐसी भूख माँझ इह भोजन पठै दियो करि जसुमति मात।
'सूर' स्याम अपनो नहिं जेंवत ग्वालन कर तें लै लै खात ॥

शब्दार्थ--छाक=वह भोजन जो चरवाहों वा हलवाहों के लिये जंगल ही में पहुँचाया जाता है, ताकि उन्हें आने जाने का कष्ट न हो। सुवल, सुदामा, श्रीदामा=कृष्ण के सखा विशेष। करि=ताज़ा बना कर। जेंवत=खाते हैं। लै लै=छीन छीन कर।

भावार्थ—कठिन नहीं है।

अलंकार—'ऐसी भूख माँझ यह भोजन' में सम अलंकार।

५१---राग सारंग

ग्वालन कर तें कौर छुड़ावत।
जूठो लेत सबन के मुख को अपने मुख लै नावत ॥
षटरस के पकवान धरे सब तामें नहिं रुचि पावत।
हा हा करि करि माँगि लेत हैं कहत मोहिं अति भावत ॥
यह महिमा एई पै जानैं जाते आप बँधावत।
'सूर' स्याम सपने नहिं दरसत मुनिजन ध्यान लगावत ॥

शब्दार्थ—कौर=(सं० कवल) ग्रास, लुकमा।

छुड़ावत = छीनते हैं। नावत = डाल लेते हैं। रुचि पावत = पसंद करते हैं, स्वाद पाते हैं। हाहा करि = अति दीनता दिखा कर। बँधावत = बंधन में पड़ते हैं। दरसत = दिखलाई पड़ते हैं।

भावार्थ—सरल है।

अलंकार—सम्बंधातिशयोक्ति (कृष्ण महिमा की)

५२—राग सारंग

सखन संग हरि जेंवत छाक।
प्रेम सहित मैया दै पठये सबै बनाए हैं एकताक॥
सुबल सुदामा श्रीदामा सँग सब मिलि भोजन रुचि सों खात।
ग्वालन-कर तें कौर छुड़ावत मुखलै मेलि सराहत जात॥
जो सुख कान्ह करत वृन्दावन सो सुख नहीं लोकहू सात।
'सूर'स्याम भगतन-वस ऐसे व्रजहि कहावत हैं नँद-तात॥

शब्दार्थ—एकताक = अति उत्तम। मेलि = डाल कर। सात लोक = भूः, भुवः, स्वः, जनः, तपः, महः, सत्य। नँद-तात = नँद के लड़के।

भावार्थ—सरल है।

(नोट) कृष्ण की सरलता और महत्व का वर्णन है।

यहाँ तक बाल-लीला का प्रसंग है।

(रूप का वर्णन)

१---राग मलार

देखो माई सुन्दरता को सागर।
बुधि विवेक बल पार न पावत मगन होत मन नागर॥
तनु अति स्याम अगाध अम्बुनिधि, कटि पट-पीत तरंग।
चितवत चलत अधिक रुचि उपजत भँवर परत अँग अंग॥
मीन नैन मकराकृत कुंडल, भुजबल सुभग भुजंग।
मुकुत-माल मिलि मानो सुरसरि द्वै सरिता लिये संग॥
मोर मुकुट मनिगन आभूषन कटि किंकिनि नखचंद।
मनु अडोल बारिध में बिंबित राका उड़गम वृंद॥
बदन चन्द्र-मंडल की सोभा अवलोकत सुख देत।
जनु जलनिधि मथि प्रकट कियो ससि श्री अरु सुधा समेत॥
देखि सुरूप सकल गोपी जन रहीं निहारि निहारि।
तदपि 'सूर' तरि सकीं न सोभा रहीं प्रेम पचि हारि॥

शब्दार्थ—मगन होत=डूब जाता है। नागर=चतुर। अगाध=अथाह। अम्बुनिधि=पानी का समूह। पट पीत=पीताम्बर। तरंग=लहर। रुचि=छवि। भुजबल=भुजाओं का दंड। भुजंग=सर्प। मुकुतमाल=मोतियों की माला। अडोल=

स्थिर। राका=पूर्णिमा की रात्रि। श्री=लक्ष्मी। प्रेम पचि=प्रेम में परिपक्क होकर। हारि रहीं=थक गईं।

भावार्थ—(कोई गोपी अन्य गोपी के प्रति कहती है) हे माई कृष्ण का रूप तो देखो, सुंदरता का समुद्र ही है। मेरा मन अति चतुर होने पर भी अपनी बुद्धि और विवेक के बल पर इस समुद्र में तैर कर पार नहीं जा सकता, उसी में डूब रहा है। शरीर की श्यामता ही अथाह जलराशि है, पीतांबर की फहरानि ही लहरें हैं।

अपने शरीर को देखते हुए मटकते चलते हैं, (इसी चाल से) अंग अंग पर जो शोभा प्रकट होती है वही भँवर (जलावर्त) हैं। नेत्र और मकराकृति कुंडल ही मछलियाँ हैं और भुजदंड ही सर्प हैं। कई लरों की मोती माला ही मानो दो नदियाँ साथ लिये हुए गङ्गा आ मिली हैं। मोर मुकुट, मणि जटित आभूषण, किंकिणी, और चन्द्रवत् नख ऐसे जान पड़ते हैं मानो स्थिर समुद्र के जल में पूर्णिमा के तारागण का प्रतिबिंब पड़ रहा हो। मुख ही चन्द्रमंडल है, जिसकी शोभा देखते ही सुख प्राप्त होता है, मानो समुद्र मथ कर चन्द्रमा, लक्ष्मी और अमृत निकाले गए हैं। कृष्ण का ऐसा सुंदर रूप देख कर गोपियाँ देखा ही करती हैं, तो भी इस रूप-सागर को पार नहीं कर सकतीं, मारे प्रेम के थक कर रह जाती हैं।

अलंकार—उत्प्रेक्षाओं से पुष्ट सांग रूपक (बहुत ही अच्छा है)।

——

२——राग गौरी

नंदनँदन मुख देखो माई।
अङ्ग अङ्ग छवि मनहु उए रवि, ससि अरु समर लजाई॥
खञ्जन मीन कुरंग भृङ्ग वारिज पर अति रुचि पाई।
श्रुतिमंडल कुंडल बिबि मकर सु बिलसत मदन सहाई॥
कंठ कपोत कीर विद्रुम पर दारिम कनिन चुनाई।
दुइ सारँगबाहन पर मुरली आई देत दोहाई॥
मोहे थिर चर विटप विहङ्गम व्योम बिमान थकाई।
कुसुमांजुलि बरषत सुर ऊपर 'सूरदास' बलि जाई॥

शब्दार्थ—समर=(सं० स्मर) कामदेव। बिबि=(सं० द्वि) दो। मदन सहाई=कामदेव की सहायता से। दारिम-कन=अनार के दाने। सारँगबाहन=हाथ।

भावार्थ—हे माई! कृष्ण का मुख तो देखो। अङ्ग अङ्ग पर ऐसी कांति है मानो सूर्य उदय हो रहे हों (आँखें चौंधिया जाती हैं) उन अंगों को देख कर चन्द्रमा और काम लज्जित हो जाते हैं। देखो नेत्र (खञ्जन, मीन, कुरङ्ग, भृङ्ग) मुख

(बारिज) पार बड़ी शोभा पा रहे हैं। कानों में दोनों कुंडल शोभित हैं मानो दो मछलियाँ हैं जो कामदेव की मदद कर रही हैं। कपोतवत कंठ है, मूँगे पर शुक बैठा (ओठों पर नासिका है) अनार के दाने चुन रहा है (दाँत कुछ खुले हैं) दोनों हाथों पर मुरली है जो रूप की दोहाई देती है। इस रूप को देख कर चराचर (वृक्ष, पक्षी) मोहित हो गए हैं। आकाश में देवों के विमान रुक गए हैं। देवता आनंदित होकर पुष्पाञ्जली छोड़ रहे हैं और सूरदास तो अपना तन और प्राण ही निछावर करता है।

अलंकार—उत्प्रेक्षा और रूपकातिशयोक्ति।

३—राग सारंग

सुन्दर मुख की बलि बलि जाऊँ।
लावनिनिधि गुननिधि सोभानिधि निरखि २ जीवत सब गाऊँ॥
अङ्ग अङ्ग प्रति अमित माधुरी प्रगटति रस रुचि ठावैं ठाऊँ।
तापै मृदु मुसकानि मनोहर न्याय कहत कबि मोहन नाऊँ॥
नैन सैन दै दै जब हेरत तापै हौं बिन मोल बिकाऊँ।
'सूरदास'प्रभु मन मोहन छवि यह सोभा उपमा नहिं पाऊँ॥

शब्दार्थ—लावनिनिधि=लावण्यनिधि,अति सुन्दर। गुननिधि=क्षमा, दया, करुणा, संतोष शीलादि उत्तम गुणों का

समूह। रसरुचि=प्रेम करने की इच्छा। अङ्ग अङ्ग... ठावँ ठाऊँ=प्रत्येक अङ्ग में इतना अधिक माधुर्य है कि देखनेवाले का मन यदि किसी अङ्ग के किसी स्थान पर लग जाय तो ऐसा जान पड़ता है कि यहीं लगा रहूँ और इसी के माधुर्य का आस्वादन किया करूँ। मोहन=मोहनेवाला। सैन=(सं० संज्ञा) इशारा। बिन मोल बिकना=बिना पसोपेश आसक्त होना, बिना रोक टोक आसक्त हो जाना।

भावार्थ—सरल ही है।

अलंकार—४थी पंक्ति में सम और विधि। अंतिम पंक्ति में धर्मबाचकोपमानलुप्ता।

४—राग सोरठ

देखु सखी मोहन मन चोरत।
नैन कटाच्छ बिलोकनि मधुरी सुभग भृकुटि बिबि मोरत॥
चंदन खौरि ललाट स्याम के निरखत अति सुखदाई।
मानहु अर्द्धचंद्रतट अहिनी सुधा चोरावन आई॥
मलयज भाल भृकुटि की रेखा कहि उपमा एक आवत।
मनो एक सँग गङ्ग जमुन नभ तिरछी धार बहावत॥
भृकुटी चारु निरखि ब्रज-सुन्दरि यह मन करत बिचार।
'सूरदास' प्रभु सोभा सागर कोउ न पावत पार॥

शब्दार्थ—बिबि = दोनों। तट = निकट। मलयज = चंदन। तिरछी = टेढ़ी।

भावार्थ—सुगम ही है।

अलंकार—३ से ६ तक दो उत्प्रेक्षाएँ (उक्तविषया)

५—राग गूजरी

देखि री हरि के चंचल नैन।
खंजन मीन मृगज चपलाई नहिं पटतर एक सैन॥
राजिवदल, इन्द्रीबर, सतदल, कमल, कुसेसय जाति।
निसि मुद्रित, प्रातहिं वे बिकसत, ये बिकसत दिन राति॥
अरुन सेत सिति झलक पलक प्रति को बरनै उपमाइ।
मनु सरसुति गङ्गा जमुना मिलि संगम कीन्हो आइ॥
अवलोकनि जलधार तेज अति तहाँ न मन ठहरात।
'सूर' स्याम लोचन अपार छबि उपमा सुनि सरमात॥

शब्दार्थ—मृगज = मृगशावक। चपलाई = चंचलता। पटतर = बरावर, समान। सैन = इशारो, हेरनि। राजिव = लाल कमल। इन्दीवर = नीला कमल। सतदल = सौ पंखड़ियोंवाला कमल। कुसेसय = (कुशेशय) कमल।

भावार्थ—हे सखी! कृष्ण के चंचल नैन देखो (कितने सुन्दर हैं)। ममोला, मछली और मृगशावक की चंचलता एक इशारे के बराबर भी नहीं। राजिव, इन्दीवरादि जितने प्रकार के कमल हैं, (वे भी समता नहीं कर सकते क्योंकि) वे सब रात को सिकुड़ जाते हैं, केवल प्रातःकाल खिलते हैं, और ये (कृष्ण के नेत्र) रात दिन प्रफुल्लित रहते हैं। नेत्रों में प्रति क्षण लाल, सफेद और काली झलक दिखाती है, उसकी उपमा कौन कहै, ऐसा जान पड़ता है कि मानो सरस्वती, गंगा और यमुना का संगम हुआ है। (और तीन नदियों के संगम से) चितवन रूपी जलधारा बड़ी तेज हो गई है कि वहां किसी का मन ठहर नहीं सकता। सूरदासजी कहते हैं कि कृष्ण के नेत्रों की अपार छवि का हाल सुन कर उपमान लज्जित हो जाते हैं।

अलंकार—४ थी पंक्ति में व्यतिरेक, ६ ठी में उत्प्रेक्षा, ७ वीं में रूपक, ८ वीं में ललितोपमा।

६—राग रामकली

देखि री देखि कुण्डल लोल।
चारु श्रवननि ग्रहित कीन्ही झलक ललित कपोल॥
बदन मंडल सुधासरवर निरखि मन भयो भोर।
मकर क्रीड़त गुप्त परगट, रूप जल झकझोर॥
नैन मीन, भुयंगिनी भ्रुव, नासिका-थल बीच।
सरस मृगमद तिलक सोभा लसति है जनु कीच॥
मुख बिकास सरोज मानहु जुवति लोचन भृंग।
बिथुरि अलकैं परीं मानहु लहरि लेत तरंग॥
स्याम तनु छबि अमृत पूरन रच्यो काम तड़ाग।
'सूर' प्रभु की निरखि सोभा व्रज तरुनि बड़ भाग॥

शब्दार्थ—लोल=चलायमान, डोलते हुए। ग्रहित कीन्ही = ले ली है। भोर = पागल, बेसुध। मकर = मछली। भुयंगिनी = सर्पिणी। भ्रुव = भृकुटी, भौंह। मृगमद = कस्तूरी। तड़ाग = तालाब।

भावार्थ—हे सखी देख तो कृष्ण के सुन्दर कानों में कुंडल कैसे हिल रहे हैं, जिनकी झलक सुंदर कपोलों ने भी धारण की है (कुंडलों के रत्नों की आभा कपोलों पर पड़ती है) कृष्ण का मुखमण्डल एक सुधासरोवर है जिसको देखकर मन पागल हो रहा है। उस सरोवर में ये कुंडल मछली हैं जो खेलती हुई कभी

छिपती हैं कभी दिखाई देती हैं। इस सरोवर में रूप जल की अधिकता है। नेत्र मछली हैं, भौंहें सर्पिणी हैं नासिका सरोवर के मध्य की लाट है, और कस्तूरी का सुन्दर तिलक ऐसी शोभा देता है मानों कीचड़ है। मुख की प्रफुल्लता मानो कमल है, देखने वाली स्त्रियों के लोचन भौंरे हैं। मुख पर अलकें छिटक रही हैं वेही मानों लहरें हैं। श्याम शरीर की छवि रूपी अमृत से भरा हुआ यह तालाब काम ने बनाया है। सूरदास कहते हैं कि श्रीकृष्ण की यह शोभा देखकर व्रज की स्त्रियाँ अपने को बड़ी भाग्यवती समझती हैं।

अलंकार—अनेक उत्प्रेक्षाओं से पुष्ट (सरोवर का) सांग रूपक।

७—राग बिहागरो

स्याम भुजा की सुन्दरताई।
चन्दन खौरि अनूपम राजत सो छबि कही न जाई॥
बड़े बिसाल जान लौं परसत एक उपमा मन आई।
मनो भुजंग गगन तें उतरत अधमुख रह्यो झुलाई॥
रतन जटित पहुँची कर राजत अँगुरी मुँदरी भारी।
'सूर' मनो फनि सिर मनि सोभत फन फन की छबि न्यारी॥

शब्दार्थ—सुन्दरताई = सौंदर्य, शोभा। (नोट) इस शब्द में हिन्दी की विशेषता देखने योग्य है। विशेषण में केवल 'ता' लगाने से भाव-वाचक संज्ञा बन सकती है, परन्तु इसमें 'ता' भी है और उसके आगे 'ई' भी लगी है। दोहरी 'तद्धित' Double suffix । इसी प्रकार कविताई, निर्लज्जताई आदि शब्द भी हिन्दी में प्रचलित हैं। जानु = पैर की गाँठ। अधमुख = नीचे को मुख किए हुए। फनि = (सं० फणी) सर्प।

भावार्थ—सरल ही है।

अलङ्कार—४ थी और ६ठी पंक्ति में उत्प्रेक्षा। 'छबिन्यारी' शब्द में भेदकातिशयोक्ति।

८—राग धनाश्री

ब्रज जुवती हरि चरन मनावैं।
जे पद कमल महा मुनिदुर्लभ ते सपनेहु नहिं पावैं॥
तनु त्रिभंग, जुग जानु, एक पग ठाढ़े, एक दरसायो।
अंकुश कुलिस ब्रज ध्वज परगट तरुनो मन भरमायो॥
वह छबि देखि रही एक टक ही यह मन करति बिचार।
'सूरदास' मनो अरुन कमल पर सुषमा करति बिहार॥

शब्दार्थ—जुवती=जवान स्त्रियाँ। त्रिभंग=तीनजगह से टेढ़ा (पैर की गाँठ, कमर, गर्दन)। एक दरसायो=एक पैर भूमि पर ऐसा है कि केवल अँगूठा मात्र भूमि को छूता है और तलवा एक ओर से दिखाई पड़ता है। अंकुश कुलिश=कृष्ण वा राम इत्यादि भगवत के अवतारों के दोनों तलवों में ४८ चिन्ह होते हैं। उन्हीं में से ये चिन्ह हैं। अरुन कमल=लाल कमल। सुषमा=शोभा।

भावार्थ—सरल ही है।

अलंकार—दूसरी पंक्तिमें सम्बन्धातिशयोक्ति। अंतिम पंक्ति में उत्प्रेक्षा।

———

६—राग कन्हारो

स्याम कमल पद नख की सोभा।
जे नख चंद्र इन्द्र सिर परसे सिव विरंचि मन लोभा॥
जे नख चंद्र सनक मुनि ध्यावत नहिं पावत भरमाहीं।
ते नख चन्द्र प्रगट ब्रज जुवती निरखि निरखि हरषाहीं॥
जे नख चन्द्र फनीन्द्र हृदय तें एकौ निमिष न टारत।
जे नख चन्द्र महामुनि नारद पलक न कहूँ बिसारत॥
जे नख चन्द्र भजत तम नाखत, रमा हृदय जेहि परसत।
'सूर' स्याम नख चन्द्र विमल छबि गोपी जन नित दरसत

शब्दार्थ—इन्द्र सिर परसे =(गोवर्धन धारण लीला में)। भरमाहीं = चक्कर में पड़े रहते हैं। फनीन्द्र = शेषनाग। तम नाखत = अन्धकार (अज्ञान) को नाश कर देते हैं। दरसत = देखा करती हैं।

भावार्थ—सरल ही है।

अलंकार—'नख चन्द्र' में रूपक। परन्तु 'कमल पद' में उपमा है।

(नोट) पूर्ण उपमा अलंकार में से जब धर्म और वाचक का लोप किया जाता है तब धर्मवाचकलुप्तोपमा अलंकार कहा जाता है और इसी प्रकार का 'रूपक' भी होता है, जैसे यहाँ 'कमल पद' और 'नख चन्द्र' शब्द हैं। कमल पद में लुप्तोपमा और नख चन्द्र में रूपक क्यों है ? इसका भेद समझ लो। मर्म यह है कि रूपक बनाने में उपमेय प्रथम और उपमान उसके बाद रहता है, जैसे नख + चन्द्र = नख चन्द्र। और धर्म वाचक लुप्ता में (उपमान + उपमेय) उपमान पहले तब उपमेय रहता है जैसे कमल पद।

———

१०—राग विहागरो

नट वर वेष काछे श्याम ।
पद कमल नख इंदु सोभा ध्यान पूरन काम ॥
जानु जंघ सुघट निकाई नाहिँ रंभा तूल ।
पीत पट काछनी मानहु जलज- केसरि झूल ॥
कनक छुद्रावली पंगति नाभि कटि के भीर ।
मनहुँ हंस रसाल पंगति रहे हैं ह्रद तीर ॥
झलक रोमावली सोभा ग्रीव मोतिन हार ।
मनहुँ गंगा बीच जमुना चली मिलि कै धार ॥
बाहुदंड विसाल तट दोउ अङ्ग चंदन रेन ।
तीर तरु वनमाल की छवि व्रज जुवति सुख देन ॥
चिबुक पर अधरन दसन दुति बिंब बीजु लजाइ ।
नासिका सुक, नैन खञ्जन, कहत कवि सरमाइ ॥
स्रवन कुंडल कोटि रवि छवि भृकुटि काम कोदंड ।
'सूर' प्रभु हैं नीप के तर सिर धरे सीखंड ॥

•

शब्दार्थ—नटवर=श्रेष्ट नट (नृत्य करनेवाला)। वेष काछे=स्वरूप बनाए हुए। पद कमल, नख इंदु=(दोनों में रूपक अलंकार है)। पूरन काम=कामना को पूर्ण करने वाले। सुघट=बनावट में सुंदर। निकाई=सुंदरता । रंभा=केला। तूल=तुल्य। काछनी=कमरपोश। भीर=भिड़ी हुई, निकट।

छुद्रावली = करधनी, किंकिणी। रसाल = सुंदर। ह्रद = हौज़, कुंड। तीर तरु = किनारे पर के वृक्ष। चिवुक = ठुड्ढी। बिंब = बिंबाफल, कुँदरू। बीजु = बिजली। कोदंड = धनुष। नीप = कदंब वृक्ष। सीखंड = (सं० शिखंड) मोर के पंख।

(नोट) इस पद में कृष्ण का नटराज वेष वर्णित है। श्रीकृष्णजी जब रास नृत्य करते थे तब कैसा रूप धरते थे।

भावार्थ—(दर्शको! देखो) श्रीकृष्ण ने नटराज का वेष किया है।

इस रूप के कमलरूपी चरणों और चन्द्र रूपी नखों का ध्यान करने से समस्त कामना पूरी होती है। जानु और जंघा की ऐसी सुन्दर बनावट है कि केला वृक्ष बराबरी नहीं कर सकता। उन जानुओं पर पीतांबर की कछुनी है वह ऐसी जान पड़ती है, मानो (कमल-कोश के चारो ओर) कमल-केसर झूल रहे हों। सोने की किंकिणी की पंक्ति नाभी और कमर से भिड़ी हुई ऐसी जान पड़ती है मानो सुंदर हंसों की कतार किसी कुंड के किनारे बैठी हो। (वहीं) रोमावली की और गर्दन में पड़े हुए मोतीहार की शोभा ऐसी जान पड़ती है मानो गंगा के बीच में यमुना की धारा मिलकर बह रही हो। दोनों विशाल भुजदंड मानो, (गंगा जमुना की मिश्रित धारा के) दोनों तट हैं, अंग में चंदन का लेप लगा है वह मानो

बालू है, वनमाला मानो किनारे के वृक्ष हैं, जो व्रज की स्त्रियों को नेत्रानंद देते हैं। ठुड्ढी के ऊपर ओठों और दाँतों की छवि देखकर बिंबाफल और बिजली लज्जित होती है। नासिका को शुक और नेत्रों को खंजन कहते कवि को शर्म आती है (अर्थात् ये उपमान उसे ठीक नहीं जँचते) कानों में जो कुंडल हैं उनकी चमक करोड़ सूर्य कीसी है, भौंहें काम के धनुष के समान हैं। सूरदास कहते हैं कि इस रूप से मोरपंख का मुकुट धारण किए श्रीकृष्ण (प्रभु) कदंब के नीचे खड़े हैं (कि सब गोपियाँ एकत्र हो जायँ तो रास नृत्य रचा जाय)।

अलंकार—रूपक और उत्प्रेक्षाएँ (बहुत से)

(नोट) इस पद में सूरदासजी ने काव्य का कला पक्ष (रूप चित्रण) दिखलाने में पूर्ण सफलता प्राप्त की है।

११—राग गौरी

नंदनँदन बृन्दावन चंद।
जदुकुल नभ, तिथि द्वितिय देवकी प्रगटे त्रिभुवन बंद॥
जठर कुहू ते बहिर बारिपति-दिसि मधुपुरी सुछंद।
बसुदेव संभु सीस धरि आने गोकुल-आनँदकंद॥
व्रज प्राची राका तिथि जसुमति सरद सरस ऋतु नंद।
उड़गन सकल सखा संकरषन तम दनुकुलज निकंद॥

गोपी जन तहँ धरि चकोर गति निरख मेटि पल द्वंद ।
'सूर' सुदेस कला षोड़स परिपूरन परमानन्द ॥

शब्दार्थ—नंद-नंदन = श्रीकृष्ण । बंद = वंदनीय । वारि पति दिसि = बरुण देव की दिसा, पश्चिम । मधुपुरी = मथुरा । आनंद कंद = आनंद बरसाने वाले मेघ । राकातिथि = पूर्णमासी । संकरषन = बलदेव जी । तम = अंधकार । दनुकुलज = दैत्यगण । निकंद = नाशक । मेटि पल द्वन्द = पलकों का मुँदना मिटाकर (टकटकी लगाकर) । सुदेस = सुंदर । षोड़स = सोलह (चंद्रमा की सोलह कलाएँ) । परिपूरन परमानंद = पूर्ण ब्रह्म का अवतार (जो पूर्ण आनंद रूप है) ।

भावार्थ—नंद-नंदन (श्रीकृष्ण) वृन्दावन के चंद्रमा हैं । यदुवंश आकाश है, देवकी द्वैज की तिथि है जिसमें त्रिभुवन वंद्य चंद्रमा निकला । गर्भरूप अमावस की रात्रि से मथुरा रूपी पश्चिम में स्वच्छंदता से वह चंद्रमा बाहर निकला । सहदेव रूपी शंकर ने उसे मस्तक पर लेकर गोकुल पर आनंद बरसाने वाले बादल की तरह उसे गोकुल में लाए ।

ब्रज रूपी पूर्ब दिशा में यशोदा रूपी पूर्णिमा और नंदरूपी सुंदर शरद ऋतु में (वह खूब बढ़ा) । सब सखा और बलदेवजी तारा गण हुए, और उस चंद्र ने दनुज रूपी अंधकार को नाश किया । गोपी जन चकोर बनीं और टकटकी लगाकर उसे

देखती रहीं। सूरदास कहते हैं कि वह चंद्रमा पूर्ण सोलहो कला का था (क्योंकि) वह पूर्ण ब्रह्म का अवतार था (इसी से सब को पूर्ण आनंद दिया)

अलंकार—सांगरूपक (चंद्रमा का)। प्रथम पंक्ति में सम तद्रूप रूपक।

(नोट) इतना सुंदर और विचार पूर्ण रूपक है कि सूर को रूपक का बादशाह मानना ही पड़ता है। सूर की कृति में ऐसे सैकड़ों रूपक हैं।

१२—राग धनाश्री

द्वै लोचन तुम्हरे द्वै मेरे।
तुम प्रति अंग बिलोकन कीन्हों मैं भइ मगन एक अँग हेरे॥
अपनो अपनो भाग्य सखी री तुम तन्मय मैं कहूँ न नेरे।
जो जो बुनिये सो पुनि लुनिये और नहीं त्रिभुवन भट भेरे॥
स्याम रूप अवगाह सिंधु तें पार होत चढ़ि डोंगन के रे।
'सूरदास' तैसे ये लोचन कृपा जहाज बिना को पैरे॥

शब्दार्थ—तन्मय=उसीमें मिला हुआ। बुनिये=(सं० वपन) बोइये। लुनिये=काटिये। भटभेरे=धक्के। अवगाह= अथाह। डोंगा=छोटी नाव। के=कौन।

भावार्थ—(राधिका बचन किसी सखी प्रति) दो आँखें तुम्हारे भी हैं और दो ही आँखें मेरे भी हैं। इन्हीं दो आँखों से तुमने कृष्ण के सब अंगों का दर्शन अच्छी तरह कर लिया, परंतु मैं तो एक ही अंग सौन्दर्य में डूब रही (अन्य अंग देख न पाई) हे सखी ! यह भी अपनी अपनो भाग्य है, तुम तो कृष्णमय हो रही हो, और मैं तो अभी उनके निकट तक भी नहीं पहुँच पाई, सो यह इस हेतु से है कि जो जैसा बोता है वैसा काटता है (जैसा करता है वैसा फल पाता है) और नहीं तो त्रिभुवन में धक्के खाते फिरना पड़ता है। कृष्ण के रूप रूपी अथाह समुद्र को (नेत्र रूपी) डोंगों में चढ़ कर कौन पार कर सकता है ? सूरदास कहते हैं कि वैसे ही ये नेत्र हैं (अर्थात् नेत्र तो डोंगे हैं, रूप समुद्र इनसे पार नहीं किया जा सकता) इस अथाह समुद्र में बिना कृपा जहाज के कौन पैर सकता है (अर्थात् कृष्ण की कृपा हो तब उनके रूप का पूर्ण ज्ञान हो सकता है)।

अलंकार—अंतिम दोनों पंक्तियों में रूपक।

१३—राग सारंग

विधातहिं चूक परी मैं जानी।
आजु गोबिंदहिं देखि देखि हौं इहै समुझि पछितानी॥
रचि पचि सोचि सँवारि सकल अँग चतुर चतुरई ठानी।
दीठि न दई रोम रोमनि प्रति इतनिहिं कला नसानी॥

कहा करौं अति सुख, दुइ नैना उमँगि चलत भरि पानी।
'सूर' सुमेर समाइ कहाँ धौं बुधि बासनी पुरानी॥

शाब्दार्थ—चूक = भूल। कला = कारीगरी। बासनी = बाँस की टोकरी।

भावार्थ—(राधिका बचन) मैं जानती हूँ कि विधाता से (मेरी रचना में) भूल हो गई है। आज श्रीकृष्ण को देख देख कर मैं विधाता की इस भूल को समझ समझ कर पछताती रही। चतुर विधाता ने मेरे अंगों को बनाने में खूब सोच समझ कर बड़ी मेहनत से मेरे सब अंग को अच्छे बनाने में चतुराई तो की, मगर उसकी कारीगरी इतनी बात में बिगड़ गई कि मेरे शरीर में प्रति रोम दृष्टि न दी। क्या करूँ! कृष्ण के दर्शन का आनंद तो अपार है और मेरे दो ही नेत्र हैं, वे भी पानी से भर कर उमड़ चलते हैं (पूर्ण रीति से देख भी नहीं सकती) सूरदास कहते हैं कि वह रूप बुद्धि में भी नहीं आ सकता, क्योंकि सुमेर पर्वत बुद्धि रूपी छोटी टोकरी में कैसे अट सकता है।

अलंकार—अंतिम पंक्ति में रूपक से पुष्ट दृष्टान्त। समस्त पद में सौन्दर्य की अत्युक्ति।

(नोट) सौंदर्य वर्णन में सूर ने इस पद में हद करदी है, कमाल है।

———

कुछ अन्तर्कथाएँ

१—अम्बरीष

अयोध्या के राजा थे। बड़े सच्चे हरिभक्त थे। एकादशी का व्रत बड़ी निष्ठा से करते थे। एक बार दुर्वासाजी इन पर क्रुद्ध हुए और शापाग्नि से इनको जलाना चाहा। भगवान् ने पहले ही से अपने सुदर्शन चक्र को राजा की रक्षा की आज्ञा दे रक्खी थी। जब सुदर्शन ने देखा कि दुर्वासा की शापाग्नि राजा को जलाने को बढ़ रही है, तब उसने निज प्रताप से अग्नि को शान्त करके दुर्वासा को जलाना चाहा। सुदर्शन की आँच से व्याकुल होकर दुर्वासा अपनी रक्षा के हेतु त्रिलोक में भागते फिरे, पर किसीने उनकी रक्षा न की। अन्त में नारद के समझाने से दुर्वासा ने पुनः राजा अम्बरीष के पास आकर अपनी रक्षा के हेतु उनसे विनय की। तब दयालु राजा ने सुदर्शन से विनती की कि मैं क्षत्री हूँ और दुर्वासा ब्राह्मण हैं, अब ये मेरी शरण में आये हैं, मेरी प्रार्थना से आप इन्हें क्षमा करें। सुदर्शन शान्त हो गए। इस बात से मर्माहत होकर दुर्वासा ने विष्णु की प्रसन्नता के हेतु कठिन तप किया। जब विष्णु प्रसन्न हुए, तब यह वर माँगा कि "राजा अम्बरीष को दस

हज़ार बार जन्म मरण का कष्ट भोगना पड़े"। विष्णु ने कहा कि ऐसा तो नहीं हो सकता, पर तुम्हारा वरदान मैं इस प्रकार पूरा करूँगा कि अन्य मनुष्यों के हज़ार जन्म मेरे एक अवतार के बराबर हैं, अतः मैं खुद राजा अम्बरीष के दस हज़ार जन्मों के बदले दस अवतार धारण करूँगा। धन्य है प्रभु की ऐसी दयालुता को।

२—अजामिल

एक महा पतित वेश्यागामी ब्राह्मण था। बकरों के चमड़े का व्यौपार भी करता था—इसीसे उसका नाम "अजामिल" हो गया था। किसी साधु के उपदेश से उसने अपने वेश्यापुत्र का नाम 'नारायण' रखाया था। मरते समय पुत्र को याद करके उसने उसका 'नारायण' नाम लेकर पुकारा और दम तोड़ दी। नारायण भगवान् के पार्षदों ने नाम महिमा के बल समस्त यमदूतों को मार भगाया और अजामिल को बैकुण्ठ में ले गए।

३—गज-ग्राह

एक गन्धर्व शापवश 'गज' हुआ। जवानी में सैकड़ों हथिनियों को साथ लिये बन में विहार करता फिरता और हर समय मस्त रहता। एक समय एक सरोवर में पानी पीने गया। वहाँ ग्राह ने उसे पकड़ा। हाथी ने ग्राह से विकट युद्ध किया, पर गहरे जल में खींच ही ले

गया। हथिनियों ने कुछ सहायता न की। जब वह हाथी डूबने लगा और देखा कि कोई भी सहायक नहीं, तब एक कमल पुष्प तोड़ कर 'नारायणार्पणमस्तु' किया। इस प्रकार से द्रवित होकर नारायण ने तुरंत अपने चक्र से ग्राह का सिर उड़ा दिया और हाथी को उठा कर शुष्क-स्थल पर पहुँचाया।

४—गणिका

एक वेश्या अपने कुकर्म में निरत रहते हुए भी किसी साधु के कहने से एक सुग्गा पाल रक्खा था और यदा कदा उसे सिखाने की गरज़ से राम राम सीताराम रटाया करती थी। इस बहाने से उसके मुख से भी कई बार रामनाम निकल जाता था। इसी के प्रभाव से अंत में उसको मुक्ति प्राप्त हुई।

५—द्रौपदी

इनकी कथा बहुत प्रसिद्ध है।

६—ध्रुव

राजा उत्तानपाद के पुत्र थे। सौतेली माता के निरादर से पाँच वर्ष की अवस्था में घर से निकल कर मथुरा में कठिन तप किया। केवल छः मास के तप से भगवान प्रसन्न हो गए। उनको भगवान ने राजा उत्तानपाद से राज्य दिलवाया और मरने पर ध्रुव तारा के रूप से अचल पद दिया।

७—नृग (राजा)

एक बड़े दानी राजा थे। एक लाख गोदान नित्य कर लेते, तब भोजन करते थे। एक समय ऐसा हुआ कि राजा ने जो गाय कल्ह एक ब्राह्मण को दी थी, वही गाय उस ब्राह्मण के घर से छूट उन गायों में आ मिली थी, जो राजा ने आज दूसरे ब्राह्मण को दी थी। दोनों ब्राह्मणों में झगड़ा हुआ। एक कहता कि मैंने कल्ह इसे दान में पाया था। दूसरा कहता कि मैंने आज दान में पाई है। झगड़ते झगड़ते दोनों राजा के पास गए। जो ही ब्राह्मण पूँछता कि तुमने यह गाय मुझे दी थी न? राजा सिर्फ सिर हिला देते। ब्राह्मण सन्तुष्ट न हुए, गाय को वहीं छोड़, घर को चले और शाप दिया कि "जा तू गिरगिट हो।" राजा गिरगिट होकर हज़ारों वर्ष द्वारका के निकट एक कुएँ में पड़े रहे। अन्त में कृष्ण ने अपने चरण स्पर्श से उसका उद्धार किया और दिव्य देह देकर स्वर्ग भेजा।

८—प्रह्लाद

कथा बहुत प्रसिद्ध है।

९—बलि

कथा बहुत प्रसिद्ध है।

१०—व्याध

एक ब्राह्मण व्याधों की संगति में पड़ कर लूट मार करता

जिसको लूटता उसे मार भी डालता। बहुत दिनों बाद सप्त ऋषियों के दर्शन से उसको कुछ ज्ञान प्राप्त हुआ और उनके उपदेश से 'मरा मरा' जप कर शुद्ध हृदय होकर तप करने लगा। इतना कठिन तप किया कि अचल रहने के कारण उसके शरीर के चारों ओर दीमकों ने बमोठा बना डाला। संस्कृत भाषा में बमीठे को 'वाल्मीक' कहते हैं। तप सिद्ध होने पर वही व्याधा 'वाल्मीक' नाम से प्रसिद्ध हुआ।

११—सुदामा

कथा बहुत प्रसिद्ध है।

अलंकार

रूपक—जो काहू के रूप इव रूप बनावै और।
रूपक ताही सों कहैं सबै सुकवि सिर मौर॥

(अथवा)

उपमानरु उपमेय तें वाचक धर्म मिटाय।
एकै कै आरोपियै सो रूपक कविराय॥

उपमेय पर ही उपमान का आरोप करना रूपक कहलाता है। जैसे—चरण-कमल, मुखचंद, नखचंद इत्यादि।

वीप्सा—यह शब्दालंकार है। इसमें कोई आकस्मिक भाव प्रगट करने के लिये एक शब्द को दो वा तीन बार लिखते हैं। जैसे—बार बार बन्दौं पदपावन। बाप रे बाप, ऐसा करते हो।

सांगरूपक—इस रूपक में कवि उपमान के समस्त अंगों का आरोप उपमेय में युक्ति से करता है, जैसे पद नं० ३, ४,

परिकरांकुर—'अभिप्राय जहाँ क्रिया को है विशेष्य पद माँहि'। जैसे—पद नं० ४ में गोपाल, और नंदलाल शब्द हैं। जिनसे यह प्रगट है कि तुम गोपाल होने से इंद्रियों को रोक सकते हो, नंदलाल होने से मुझे भी आनन्द दे सकते हो।

उदाहरण—ज्यों, यों, जैसे, कहि, करिय, युग, घटना, सम, तुल्य।

जैसे—अविगत गति कछु कहत न आवै।
ज्यों गूंगेहि मीठे फल को रस अंतरगत ही भावै॥
(पर कहत न बनत)

उदात्त—संपति की अत्युक्ति को कोविद कहत उदात्त।
जैसे—पद नं० ६ की प्रथम चार पंक्तियों में है॥

(अथवा)

लक्ष्मी सी जहँ मालिनि बोलै।
बंदन माला बाँधत डोलै॥
द्वार बुहारत फिरति अष्ट सिधि।
कौरेन सथिया चीतति नौ निधि॥

अथवा देखो बाल लीला पद नं० १।

सम—'यथा योग्य को सँग जहँ तहँ सम कहौ बखानि'।
जैसे—जेइ बिरंचि रचि सीय सँवारी।
तेइ स्यामल बर रच्यो बिचारी॥
जस दूलह तस बनी बराता।
कुबजा को कूबर मधुप है त्रिभंगिहि जोग।

उपमा—रूप रंग गुण काहु को काहू के अनुसार।

दृष्टान्त—लखि बिंबा प्रतिबिंब गति उपमेयो उपमान।
वाचक पद के लोप ते है दृष्टांत सुजान॥

जैसे पद नं० १२ की अंतिम पंक्ति में अथवा।

दो०—निरखि रूप नँदलाल को दृगन रुचै नहिं आन।
तजि पियूष कोऊ करत कटु औषधि को पान॥

हेतु—(दूसरा)

कारण कारज ये जबै लसत एकता पाय,

जैसे—तुम्हारी भक्ति हमारे प्राण।

तुल्ययोगिता (तीसरी)—

सम करिये उत्कृष्ट गुण बहु के एक महँ लाय।

जैसे—पद नं० २२ की ६वीं पंक्ति में अथवा

जाय जोहारै कौन को कहा कहूँ है काम।
मित्र मातु पितु बन्धु गुरु साहेब मेरे राम॥

रूपकातिशयोक्ति—जहँ केवल उपमान कहि प्रगट करैं उपमेय

श्लेष—दोय तीनि अरु भाँति बहु आवत जामें अर्थ।

जैसे—पद नं० २५ की दूसरी पंक्ति में 'हरि' शब्द है।

ललित—ललित अलंकृत जानिये कहो चाहिये जौन।
ताही के प्रतिबिम्ब ही वरनन कीजै तौन॥

जैसे—पद नं० ३१ की चौथी पंक्ति में "तजि गङ्गोदक पिये कूप जल" (अथवा) 'लिखत सुधाकर गा लिखि राहू।'

विधि—जहाँ सिद्धिऊ अर्थ को करिये बहुरि बिधान।

जैसे—पद नं० ३२ में अथवा सेवक सो जो करै सेवकाई।

विश्व भरन पोषण करु जोई। ताकर नाम भरत अस होई॥

पर्यायोक्ति—सीधे न कह कर घुमा फिरा कर बात कहना।

जैसे—पद नं० ३३ में तीसरी पंक्ति में "दानव दुष्ट असुर को बालक" का अर्थ है प्रह्लाद और "भगतराज कुन्ती को सुत" अर्थ है अर्जुन।

हेतु (प्रथम) कारण कारज सँग ही जहँ वरणै इक ठौर।

जैसे—पद नं० ३५ की अन्तिम पंक्तिमें।

सम्बन्धातिशयोक्ति—किसी बड़े से सम्बन्ध दिखला कर किसी वस्तु का मूल्य बढ़ाना।

जैसे—बाललीला के पद नं० ५ की अन्तिम पंक्ति में।

गम्योत्प्रेक्षा—जहाँ वाचक का लोप करके उत्प्रेक्षा की जाय। यह उत्प्रेक्षा प्रायः हेतु और फल में होती है।

जैसे—पद नं० ६ के पंक्ति तक में।

स्मरण—सदृश वस्तुलखि सदृश की सुधि आवै जेहि ठौर।

जैसे—पद नं० ६ के उत्तरार्द्ध में।

उक्तविषयावस्तूत्प्रेक्षा—जहाँ पहिले उत्प्रेक्षा का विषय कह दिया जाय, तब उसके अनुरूप कल्पना की जाय।

जैसे—पद नं० ६ की अन्तिम पंक्ति में। पद नं० १२ में भी बड़ी सुन्दर उत्प्रेक्षाएँ हैं।

प्रतीप—उपमेय को उपमान बनाना वा उपमेय से उपमान को निरादृत वा लज्जित करना।

जैसे—पद नं० ३० की पंक्ति ५, ६ में है।

लोकोक्ति—लोकोकति जहाँ लोक की कहनावति ठहराय,

जैसे—पद नं० ३३ में।

पिहित—जहाँ छिपे पर वृत्त को समुझि करै कछु काज।
जाते प्रगटै जानिबो सो पीहित कविराज॥

व्यतिरेक—उपमाने उपमेय में अधिक कछू गुण होय।

समास

Sri Pratap Singh
Public Library
Srinagar.

SPS
891.431 B 51 S
9588